अशोक वाजपेयी का जीवन

जन्म :

अशोक वाजपेयी का जन्म वर्षगाँउ पंचांग से सकट गणेश चतुर्थी को अंग्रेजी कैलेण्डर के अनुसार 16 जनवरी सन् - 1941 छत्तीसगढ़ (तत्कालीन मध्यप्रदेश) के दुर्ग में एक कान्यकुब्ज ब्राह्मण परिवार में हुआ है। कवि अशोक वाजपेयी अपने जन्म-कथा अपनी 'पीछे आगे'शीर्षक कविता में इस तरह व्यक्त करते हैं —

'अब जैसे मेरा जन्म ही है
मैं उसे सकट गणेश चतुर्थी के दिन तो रहने देता हूँ
लेकिन दुर्ग के बजाय छत्तीसगढ़ के किसी गाँव में कर देना चाहता हूँ
जहाँ मेरे नाना अपने दौरे पर गए हों
और मेरी आसन्नप्रसवा माँ जिदकर उनके साथ गई हो।' [1]

पिता श्री परमानन्द वाजपेयी सागर विश्वविद्यालय में डिप्टी रजिष्ट्रर थे। माँ की पहली सन्तान होने के नाते आपका जन्म नाना के घर हुआ और उनके बचपन का अधिकतर समय अपने नाना-नानी के साथ ही गुजरा। अशोक वाजपेयी के नाना प्रशासन में सेवारत थे स्थानान्तरणों के कारण उनको इधर-उधर रहना पड़ता था तो अशोक वाजपेयी का बचपन भी उसी हिसाब से कई जगहों पर बीता। दुर्ग में जन्म तो हुआ था पर अशोक वाजपेयी को दुर्ग की रत्ती भर भी याद नहीं है, उनकी जो पहली याद है वह खुरई की है जो सागर की एक तहसील है। वहाँ भी वह नाना के घर ही थे क्योंकि उनके नाना उस समय वहाँ के तहसीलदार थे। खुरई को याद करते हुए कवि अशोक वाजपेयी कहते हैं - 'मेरा जन्म दुर्ग में हुआ था। मेरे नाना डिप्टी कलेक्टर थे। मैं अपनी माँ की पहली सन्तान था। लेकिन दुर्ग की तो मुझे रत्ती-भर याद नहीं है। मेरी जो पहली-पहली याद है वह खुरई की है, जो कि सागर

की एक तहसील है। मेरे नानाजी वहाँ तहसीलदार थे। मेरा बहुत सारा जीवन नाना-नानी के साथ गुजरा है। मुझे याद है कि खुरई में जहाँ हम रहते थे। वहाँ एक बड़ा भारी जैन मन्दिर था। वहाँ सामने एक अखाड़ा भी था। खुरई के घर की भी मुझे याद है। कस्बे जैसे जगह थी।'[2]

अशोक वाजपेयी के पिता श्री परमानन्द वाजपेयी का पैतृक गाँव राजापुर गढ़ेवा था जो निरालाजी के गढ़कोला और नन्ददुलारे वाजपेयी के मगरायर के बहुत करीब था। जो उत्तर प्रदेश राज्य के उन्नाव जिले में है। और वही राजापुर गढ़ेवा में अशोक वाजपेयी का जनेऊ हुआ था। अपने पैतृक गाँव के बारे में अशोक वाजपेयी का कहना हैं - 'हमारे पिता जिन्हें हम अपनी चचेरी बहनों की तर्ज पर काका कहते थे, बैसवाड़े के थे। उनका पैतृक गाँव था राजापुर गढ़ेवा, जो निराला के गढ़कोला और नन्ददुलारे वाजपेयी के मगरायर के पास था,जिला उन्नाव में।'[3] अशोक वाजपेयी की माँ बुन्देल खंड की थी। कुल मिलाकर अशोक वाजपेयी का बचपन का अधिकतर समय गोपालगंज अर्थात सागर में ही बीता, जहाँ उनके पिता किराए के मकान में रहते थे। यद्यपि अशोक वाजपेयी अपने नाना के घर में ज्यादा रहते थे उनका घर अशोक वाजपेयी के घर के ठीक सामने रास्ते के उस पार था। इस बारे में अशोक वाजपेयी का कहना हैं - 'मैं अपने घर पर कम नाना के घर अधिक रहता था। पढ़ने की जगह वही और सोने की। खाना अलबत्ता अपने घर पर ही खाता था हालाँकि जब तब वही भी ननिहाल में। नानी चाय अलग किस्म की मेरे लिए बनाती थी सो वह चाव से वही पीता था। एक तरह से मेरे पालन-पोषण की जिम्मेदारी नाना-नानी ने, जिन्हें हम अपनी माँ की तरह दादा-अम्मा कहते थे, ले रखी थी।'[4]

शिक्षा-दीक्षा :

कवि अशोक वाजपेयी की प्रारम्भिक, माध्यमिक और उच्च माध्यमिक शिक्षा सागर की लालगंज सरकारी स्कुल में हुई। उसके बाद उन्होंने मैट्रिक पास करके

सागर विश्वविद्यालय में साइंस शाखा में नामभर्तिकरण करवाया और दो साल बाद वहाँ से टॉप होकर निकला। फिर वही सागर विश्वविद्यालय से ही उन्होंने बी.ए. में अंग्रेजी, संस्कृत और इतिहास को विषय के रूप में लेकर पढ़ाई करके सुख्याति से पास किया। यहाँ उल्लेखनीय बात यह है कि हिन्दी साहित्य के विशिष्ट कवि अशोक वाजपेयी अपने छात्र जीवन में कभी भी हिन्दी का वैध विद्यार्थी नहीं रहा। इस प्रसंग में कवि अशोक वाजपेयी का कहना हैं– 'वैसे मैं हिन्दी का वैध विद्यार्थी कभी नहीं बना। मैट्रिक के बाद भी यूनिवर्सिटी में मैंने साइंस ले ली। प्रसंग वश मैंने टॉप भी किया। बी.ए. में अंग्रेजी, संस्कृत और इतिहास लेकर पढ़ाई की। स्कूल में भी दसवीं में यह विकल्प था कि हिन्दी पढ़िए या संस्कृत पढ़िए। तो मैंने संस्कृत ले ली। यानि कभी भी हिन्दी का वैध विद्यार्थी मैं रहा ही नहीं।'[5] सागर विश्वविद्यालय से बी.ए. करने के बाद आपने सेंट स्टीफेंस कॉलेज दिल्ली से अंग्रेजी विषय लेकर एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। सेंट स्टीफेंस कॉलेज में पढ़ाई की यह दो साल अशोक वाजपेयी के लिए कई मायनों में महत्वपूर्ण रहा है। सागर जैसे छोटे शहर से राजधानी शहर दिल्ली में आकर उनकी एक बड़ी दुनिया से परिचय हुआ और देश के सबसे महत्वपूर्ण शहर दिल्ली में उसे बहुत कुछ सहज प्रारब्ध हुआ जिसका प्रभाव उनके आगे की जिन्दगी में काफी लाभप्रद साबित हुआ है। स्वंय कवि अशोक वाजपेयी भी इस बात को स्वीकारते हैं – 'सेंट स्टीफेंस में रहने से एक नई दुनिया से मेरा परिचय हुआ। वह दुनिया धनाढ्यों की दुनिया भी थी, कुशाग्रों की दुनिया भी थी, यानि एक ऐसी दुनिया थी जिसमें सारी दुनिया में क्या हो रहा है पता चलता था! ... सेंट स्टीफेंस में एक लाभ यह हुआ कि अंग्रेजी में गति बढ़ गई। जब मैं पहली बार विदेश गया तो लोग पूछते थे आप कैंब्रिज में पढ़े है? फिर यह हुआ कि मेरे लिए जो चीजें दूर की थी वह नजदीक आ गई। मसलन मैंने अगर हुसैन की कलाकृति पर कविता लिखी तो 'कल्पना ' में छपी थी वहाँ देखकर लिखी, अली

अकबर खाँ को रेडियों पर सुना। यहाँ सबको रू-ब-रू देखने-सुनने का मौका मिला। फिर बाद में इस दुनिया से संपर्क भी हुआ।'[6] इसी बीच दयाल सिंह कॉलेज, दिल्ली में अंग्रजी विभाग में अध्यापना करते हुए सन् 1965 में अशोक वाजपेयी आई.ए.एस. की परीक्षा उत्तीर्ण की।

पारिवारिक जीवन :

किसी भी व्यक्ति का निर्माण और परिवर्धन की शुरूआत परिवार से ही होता है। व्यक्ति जीवन के प्रभात में सर्वप्रथम परिवार कें स्नेहिल सरस वातावरण में ही अपने आँखे खोलता है। प्रकृति तथा परिवेश के साथ धीरे-धीरे परिचित होने में व्यक्ति को प्रथमत: परिवार ही मार्ग-दर्शन करता है। भले-बुरे उचित-अनुचित, ममत्वबोध आदि का ज्ञान पहले-पहले परिवार ही सिखाता है। सम्पूर्ण निष्कलोष-मासूम तथा अबोध मस्तिष्क पर बचपन के संस्कार अपनी अमिट छाप छोड़ जाते हैं। जिस काल के पारिवारिक परिवेश में व्यक्ति का जन्म होता है उस पर उसके भावी जीवन के संस्कार, विचार एवं मान्यताएँ निर्भर रहती हैं। अत: किसी भी व्यक्ति का प्राथमिक और प्रारम्भिक पाठशाला तथा प्रेरणा स्रोत परिवार ही है।

खुदकिस्मती से कवि अशोक वाजपेयी का जन्म ऐसे परिवार में हुआ जहाँ उन्हें जन्म के साथ-साथ विरासत में बहुत कुछ मिल गया जैसा कि भरे-पूरे शिक्षित बल्कि उच्चशिक्षित और संस्कार-सम्पन्न परिवार। यद्यपि अशोक वाजपेयी का जन्म दुर्ग में हुआ उनक नाना के घर, लेकिन उनके पिता श्री परमानन्द वाजपेयी जो सागर विश्वविद्यालय में डिप्टी रसिस्ट्रर थे वे सागर के गोपालगंज मुहल्ले में किराए के मकान में रहते थे और यही गोपालगंज में कवि अशोक वाजपेयी का बचपन-किशोरावस्था से लेकर जीवन के पारम्भिक और अत्यन्त महत्वपूर्ण समय बीता। आज जिस मुकाम पर कवि अशोक वाजपेयी पहुँच पाये हैं उसके पीछे गोपालगंज अर्थात सागर का योगदान काफी महत्वपूर्ण रहा है। अपने शहर को याद करते हुए

अशोक वाजपेयी कहते हैं- 'अगर कुछ कर पाया तो सागर ने ही कहीं न कहीं यह बार-बार कहा था कि करना सम्भव है। यहाँ तालाब है, प्रकृति भी, अंग्रेजी राज के अवशेष थे, स्वतन्त्रता संग्राम में जीवट-हिम्मत से लड़े लोग थे। विचित्र-सा छोटा लेकिन अद्‌भूत शहर था वह। ऐसे शहर बार-बार नहीं मिलत। कम से कम मैं जानता हूँ कि मुझे जो यह जीवन एकबार मिला है उस जीवन में सागर से बेहतर कुछ मिल भी क्या सकता था।' [7] फिर आगे वे कहते हैं- 'एक तरह से मेरी आत्मा का भूगोल यही बना और मैं उम्मीद लगाए रहा कि मेरे मरते तक वह भूगोल वैसा ही बना रहेगा।' [8]

अशोक वाजपेयी के पिता बैसवाड़े के थे। उनका पैतृक गाँव राजापुर गढ़ेवा था। और उनके बाबा वेदान्त के अध्येता थे हालाँकि किसान थे और उनके ताऊ श्री आनन्द मोहन वाजपेयी बनारस से हिन्दी में प्रथम श्रेणी में एम.ए. थे। जो रायगढ़ के कला प्रेमी राजा चक्रधर सिंह के यहा महालेखाकर थे। और बाद में वे सागर विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के संस्थापक अध्यक्ष थे। दुर्भाग्यवशतः उनकी जल्दी मृत्यु हो गई। यहाँ उल्लेखनीय बात यह है कि कवि अशोक वाजपेयी में जो बचपन से ही पढ़ने में रूचि पैदा हुई मूलतः वह उनके इन्हीं ताऊ का प्रभाव था। इस स्मृति को कवि याद करते हुए कहते हैं — 'तो बचपन की मेरी एक याद यह भी है कि उन्होनें मुझे बच्चों की कहानियों की किताबे बगैरह दी थी पढ़ने के लिए। बाद में उनकी मृत्यु हो गई। तो पढ़ने की जो रूचि मुझमें है वही से आई।' [9] अशोक वाजपेयी के दादाजी पंडित रामेश्वर वाजपेयी भी पढ़े-लिखे आदमी थे। निरालाजी से भी उनका संबंध था और कभी कभार निरालाजी उनके घर आया करते थे। अशोक वाजपेयी के और एक ताऊ थे जो बहुत ही कवि हृदय व्यक्ति थे, जिनके बारे में कवि अशोक वाजपेयी सिर्फ सुनाभर थे। जिनकी मृत्यु शायद यक्ष्मा से हुई थी। जब वे मर रहे थे तो उन्होंने अपने भाई आनन्द मोहन वाजपेयी को पद्य

में पत्र लिखा था। इस प्रसंग में अशोक वाजपेयी कहते हें – ''फिर हमारे एक और ताऊ थे जिनके बारे में मैंने सिर्फ सुना–भर था। वे बहुत ही कवि हृदय थे। उनकी शायद यक्ष्मा से मृत्यु हुई थी। जब वे मर रहे थे तो उन्होंने अपने भाई आनंदमोहन वाजपेयी को पद्य में पत्र लिखा था। तो बहुत स्पष्ट तो नहीं पर एक साहित्यिक परंपरा थी हमारे परिवार में।' [10] उधर अशोक वाजपेयी के नाना का परिवार भी काफी पढ़े–लिखे का परिवार थे। उनके नाना और मामा भी प्रशासक थे। अशोक वाजपेयी के मामा मध्यप्रदेश के गृह सचिव थे और बाद में चुनाव आयुक्त होकर रिटायर हुए। अशोक वाजपेयी की माँ भी पढ़ी–लिखी और धार्मिक प्रवृत्ति की थी जो रोज 'रामचरित–मानस ' की पूजा करती थी।

कुल मिलाकर अशोक वाजपेयी का परिवार काफी भरा–पूरा और बड़ा परिवार था। वे आठ भाई–बहन थे चार भाई थे – अशोक वाजपेयी सबसे बड़ा है बाकी तीन भाइयों का नाम अनिल वाजपेयी, अरून वाजपेयी और उदयन वाजपेयी और चार बहनें थी। उनके अलवा उनके ताऊ श्री आनन्दमोहन वाजपेयी के पिताजी के ताऊ और उनकी बहन जो काफी अशक्त हो गए थे वे लोग भी उन्हीं के घर में रहते थे। इस बारे में अशोक वाजपेयी कहते हैं– 'हम आठ भाई–बहन थे। फिर आनन्द मोहन वाजपेयी जी की मृत्यु जल्दी हो गई थी तो उनकी दो लड़कियाँ भी हमारे घर में रहती थी। कुल दस बच्चें थे। उनकी दोनों लड़कियाँ के नाम थे अनामिका और कामायनी। अनामिका नाम कालातंर में बदलकर मनोरमा हो गया। उन्होंने मेरा नाम परिमल रखा था। मेरे दादाजी को यह पसंद नही आया कि पहला लड़का हुआ वंश में और उसका ऐसा नाम। तो उन्होंने मेरा नाम बदल दिया। बड़ा भारी मध्यवर्गोय परिवार था। मेरे दादाजी की तो मृत्यु हो चुकी थी पर मेरे पिताजी के ताऊ और उनकी बहन जो काफी अशक्त हो गए थे हमारे ही साथ रहते थे।

बहुत बड़ा परिवार था। नानाजी के घर में भी मौसियाँ थी। मामा थे। सब पढ़े-लिखे थे। यानि वैसे काफी पढ-लिखों का परिवार था।'[11]

वैसे अशोक वाजपेयी अक्सर उनके नाना-नानी के घर रहते थे जो उनके घर के ठीक सामने सड़क के उस पार था। उस समय का गोपालगंज काफी साफ सुथरा और जनाकीर्ण था, कई जाति-धर्म-वर्ण के लोग वहाँ रहते थे, घर और मुहल्ले में कोई अन्तर नहीं होता था। तत्कालीन गोपालगंज को याद करते हुए अशोक वाजपेयी कहते हैं- 'हमारे नाना-नानी हमारे घर के ठीक सामने रहते थे। बीच में गोपालगंज मुहल्ले की मुख्य और तब भी खासी जनाकीर्ण सड़क थी। सड़क सागर शहर के तालाब के पास होते हुए एक ओर कटरा बाजार, तीन बत्ती, स्टेशन सिनेमाघर आदि की ओर। मुहल्ले में तब-बहुत कम दुकानें थीं लेकिन चमारों, कुछ मुसलमानों और इसाइयों की बस्तियाँ थी। एक पुराना देवी का मन्दिर और वृन्दावन बाग थे, छोटो सी मस्जिद थी। मुहल्ले के छोर पर एक चर्च और स्वीडिश मिशन ईसाई स्कूल। आगे जेल और थाना थी। दूसरे छोर पर बंगालियों की एक कालीबाड़ी जिसमें दशहरे के आसपास दुर्गापूजा का विशद और मनोरम आयोजन होता था।'[12] अशोक वाजपेयी के नानाजी क घरमें भी मौसियाँ थी, मामा थे। सब पढ़े लिखे थे अर्थात बहुत बड़ा परिवार था और काफी पढ़े-लिखों का परिवार था। इसी गोपालगंज से शुरू होता है अशोक वाजपेयी के जीवन का हर एक मुहिम कविता लिखना, प्रेम करना फिर अपने शहर को छोड़कर दूसरे शहर को जाना- 'कहाँ है घर' कविता में वे कहते हैं-

'44 गोपालगंज सागर का मकान
कुएँ और हर सिंगार के पेड़वाला
जहाँ से शुरू हुई कविता -
जहाँ हुआ प्रेमारम्भ

जहाँ से शहर छोड़कर दूसरे शहर जाना शुरू हुआ।' [13]

27 जून सन् 1966 को हिन्दी साहित्य के जाने माने लेखक श्री नेमिचन्द्र जैन की सुपुत्री कथक की निष्णात रश्मि जैन से उनका विवाह हुआ। पारिवारिक दृष्टि से भी अशोक वाजपेयी का जीवन सफल और सुखमय रहा है। जबकि इस सफलता के पीछे पत्नी रश्मि की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण रही है। अपने अतिशय व्यस्ततापूर्ण जीवन में हरेक दिशा में पत्नी रश्मि की भूमिका किस कदर रही है स्वयं अशोक वाजपेयी यों स्वीकार करते हैं – 'हालाँकि रश्मि एक महानगर के अपेक्षाकृत अधिक विकसित परिवार से आई थी उसने बहुत जल्दी अनायास ही मेरे परिवार में अपनी सहजता, विनम्रता और गृहकार्य–कुशलता से केन्द्रीय स्थिति बना ली। विवाह के बाद मेरे पिता ने कोई भी महत्वपूर्ण निर्णय बिना रश्मि से सलाह किए नहीं लिया जबकि खुद मुझसे वे कम ही सलाह लेते थे और रहे। नर्तकी होने के साथ–साथ एक बिलकुल नया घर, जतन और सुरूचि से बसाने–चलाने में रश्मि ने बहुत तत्परता दिखाई। तीसरे, प्रशासन में औरों के यहाँ हमेशा हमसे ज्यादा था पर रश्मि ने कभी न तो कमतरी का अहसास किया, न ज्यादा की इच्छा की। बाद में, जब भोपाल में, अपनी पूर्णकालिक प्रशासनिक जिम्मेदारियों के साथ संस्कृति के क्षेत्र में मेरा बेहद सक्रिय और व्यस्त होना शुरु हुआ तो लगभग बीस बरस रश्मि ने ही परिवार चलाया और मुझे कभी उसके लिए परेशान नहीं होने दिया। दरअसल मेरे बेटे और बेटी को पाला–पोसा उसी ने। मध्यप्रदेश के तथाकथित सांस्कृतिक रेनेसाँ में रश्मि की शान्ति और अलक्षित पर महत्वपूर्ण भूमिका रही है। उसी के सहारे से सम्भव हुआ कि मैं मध्यप्रदेश में लगभग एक हजार सांस्कृतिक आयोजन कर पाया।' [14] फिर इस पसंग में आगे वे कहते हैं – 'पर जो कुछ थोड़ा बहुत कर पाया हुँ उसमें रश्मि की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण रही है। मेरी प्राय: पित्तामार सार्वजनिक सक्रियता सम्भव ही नहीं थी अगर घर–परिवार की पूरी जिम्मेदारी रश्मि ने न

सँभाली होती।'[15] इसो बीच सन् 1973 में अशोक वाजपेयी के पिता श्री परमानन्द वाजपेयी की कैंसेर से आक्रान्त होकर मृत्यु हो गई और परिवार की पुरी जिम्मेदारी अशोक वाजपेयी पर पड़ा। यह दायित्व भी पत्नी रश्मि जैन की आन्तरिक सहयोग से पुरी तरह से निभाई। आपके एक मात्र पुत्र कबीर एक वास्तुकार है जो 'विन्यास' नामक संस्था चलाता है और एकमात्र पुत्री दूर्वा जो सामाजिक कार्यकर्ता है और विकलांग बच्चों के साथ काम करती है। अशोक वाजपेयी अपने कर्मजीवन में स्थानान्तरणों के कारण विभिन्न जगहों पर रहे, फिलहाल आप स्थायी रूप से दिल्ली में रहते हैं।

कर्म-जीवन :

अशोक वाजपेयी के कर्म-जीवन की शुरूआत सन् 1963 में दयालसिंह कॉलेज, दिल्ली में अंग्रेजी विभाग में अध्यापक के रूप से होता है। वहाँ उन्होंने दो साल तक अध्यापना की। फिर आई.ए.एस परीक्षा मं उत्तीर्ण होकर कॉलेज की नौकरी छोड़कर भारतीय प्रशासनिक सेवा में दाखिल होते हुए एक साल के लिए राष्ट्रीय प्रशासन अकादेमी मसूरी चले जाते हैं प्रशिक्षण के लिए। फिर उन्होंने वहाँ से अपने प्रदेश अर्थात मध्यप्रदेश लौट आते हैं और अगले सत्ताइस बरस तक यही मध्यप्रदेश में विभिन्न जगह में विभिन्न पदों पर सेवारत रहें। अवश्य सबसे अधिक समय अर्थात 20 साल भोपाल में ही रहे हैं। अपने कर्म जीवन के अन्तिम दौर में वे भारत सरकार के संस्कृति विभाग में संयुक्त सचिव की हैसियत से कुछ दिन दिल्ली में भी रहे। आखिर में अशोक वाजपेयी महात्मागांधी अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय के प्रथम कुलपति पद से सेवानिवृत्त होकर लगभग चालीस वर्षो की लम्बी अवधि की सार्वजनिक सेवा का इस तरह समापन करते हैं। फिलहाल दिल्ली में रहते हुए स्वतन्त्र लेखन के साथ साथ ललितकला अकादेमी का अध्यक्ष का दायित्व निभा रहे हैं।

साहित्यिक जीवन

कवि के रूप में:

हिन्दी साहित्य के वरिष्ठ कवि एवं अपनी पीढ़ी के संभवत सबसे सक्रिय और बहुआयामी लेखक अशोक वाजपेयी के अब तक तेरह कविता-संग्रह प्रकाशित हुए हैं-

शहर अब भी सम्भावना है, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली - 1966.

एक पतंग अनन्त में, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली-1984.

अगर इतने से, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली- 1986.

तत्पुरूष, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली - 1989.

कहीं नहीं वहीं, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली-1991.

बहुरि अकेला, संस्कृति प्रतिष्ठान, नयी दिल्ली- 1992.

आविन्यों, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली - 1995.

अभी कुछ और, प्रवीण प्रकाशन, नयी दिल्ली- 1998,

समय के पास समय, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली-2000.

इबारत से गिरी मात्राएँ, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर - 2002.

कुछ रफू कुछ थिगड़े, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली- 2004.

उम्मीद का दुसरा नाम, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली - 2004.

दुख चिट्ठीरसा है, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली- 2008.

कवि अशोक वाजपेयी के कविताओं का अब तक बारह संचयन भी प्रकाशित हो चुके हैं। बंगला, मराठी, गुजराती, उर्दू, राजस्थानी समित कई भारतीय भाषाओं के साथ-साथ अंग्रेजी, पोलिश और फ्रेंच आदि कई विदेशी भाषाओं में भी उनकी कविताओं का अनुवाद हुआ है। कवि अशोक वाजपेयी को अपने कविता संग्रह 'कहीं नहीं वहीं' के लिये साहित्य अकादेमी पुरस्कार 1994, पहला दयावती

मोदी कवि शेखर सम्मान और कबीर सम्मान के अलावा फ्रेंच सरकार का आफिसर ऑफ द आर्डर ऑव द आर्टस एंड लैटर्स 2005 और पौलिश सरकार का ऑफिसर ऑव द ऑर्डर ऑव क्रास 2004 सम्मान प्राप्त हुआ हैं।

आलोचक के रूप में:

कवि अशोक वाजपेयी एक सशक्त कवि के साथ-साथ समकालीन हिन्दी साहित्य के एक जाने-माने आलोचक भी हैं। कई आलोचकों का तो यहाँ तक मानना है कि अशोक वाजपेयी के कवि रूप से उनका आलोचक रूप अधिक आकर्षक-आक्रामक और सक्रिय रहा हैं। अशोक वाजपेयी की आलोचना का आरंभ षाठ के दशक के अन्तिम वर्षों स होता है। या कहें कि अशोक वाजपेयी की आलोचनात्मक सक्रियता उनके कवि-कर्म के साथ-साथ ही आरम्भ हुई। अशोक वाजपेयी का पहला आलोचनात्मक निबंध 'लेखक की प्रतिबद्धता' जो नामवर सिंह के कहने पर उन्होंने लिखा था। इस बारे में अशोक वाजपेयी कहते हैं - 'आलोचना लिखने में मुझे प्रवृत्त करने का श्रेय दो लोगों देवीशंकर अवस्थी और नामवर सिंह को जाता है। बल्कि अपना पहला निबंघ 'लेखक की प्रतिबद्धता ' मैंने नामवर सिंह के कहने पर ही लिखा था।' [16] तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं-कल्पना, झानोदय, माध्यम,कृति आदि में उन्होंने नई कविता आन्दोलन के दौर में एक युवा आलोचक के रूप में अपनी पहचान बनाई थी। उनकी आलोचना में बहुलतावादी दृष्टि भंगी मुखर रहा है। जैसा कि बहुलतावाद के प्रबल पक्षधर अशोक वाजपेयी जीवन और साहित्य के हरेक क्षेत्र में, हरेक विधा में बहुलतावाद के हिमायती रहे हैं। वह चाहे कविता हो या आलोचना, आयोजन या सम्पादन अथवा भारतीय संस्कृति ही क्यों न हो। जिस तरह से अशोक वाजपेयी की कविता का भुगोल विविधता से भरपूर हैं उसी तरह से उनकी आलोचना संसार भी, वे आलोचना में भी अपने समय और भाषा में मनुष्य होने के अर्थ, उन अर्थों की व्याप्ति और संरचनाएँ आदि खोजते हैं।

अशोक वाजपेयी अपनी आलोचनात्मक सक्रियता के केन्द्र में बहुलता की अवधारणा को ही रखते हैं। सच् तो यह है अशोक वाजपेयी के बहुलता की अवधारणा का सशक्त–मजबूत और प्रामाणिक रूप से वितान और विस्तार उनकी आलोचना में ही देखा जा सकता है। चाह वह आलोच्य विषय हो, भाषा हो, शब्द हो, अथवा कवि या लेखक हरेक क्षेत्र में। दरअसल कविता से ज्यादा आलोचना में अपनी दृष्टि और रूचि से परे जाकर दृष्टि की बहुलता का व्यापक प्रकट और प्रयोग किया जा सकता है या करने की गुंजाइश होते है। अशोक वाजपेयी का भी यही मानना हैं – 'कविता आप अपनी निजी दृष्टि से लिख सकते हैं आलोचना में आप स्वयं अपनी कविता की रुचि और दृष्टि से कहीं आगे जा सकते है; सम्पादन और अन्य सार्वजनिक आयोजन में आप रुचि–दृष्टि की बहुलता को व्यापक रूप से प्रकट होने का अवसर दे सकते हैं।' [17] आलोचना में उन्होंने जो हिम्मत और चाहत दिखाई वह सचमुच काबिले तारीफ है। तभी तो आलोचक विश्वनाथ प्रसाद तिवारी कहते हैं– ''श्री वाजपेयी आलोचना में बहुलता की अवधारणा का समर्थन करते हैं। वे आलोचना के जनतन्त्र की बात करते हैं। वे कुछ लोगों द्वारा बनाए गए 'प्रसाद या प्रेमचंन्द' और 'अज्ञेय या मुक्ति बोध' जैसे 'साहित्य युग्म' के विरोधी हैं। वे मानते हैं कि उन्हें दोनों चाहिए। किसी एक को चुनने की मजवूरी क्यों ? हम किसी दूसरी जीवन दृष्टि या दूसरी विचारधारा को साहित्य से बहिष्कार नहीं कर सकते। उनका मानना है कि बहुलता की अवधारणा भारतीय संस्कृति, दर्शन और चिन्तन की प्राचीन विशेषता है। वह पूर्णता और समग्रता का स्वप्न देखती रही है। इसे हमें स्वीकार करना चाहिए। इससे किसी एक विचार धारा की तानाशाही समाप्त होती है, जनतन्त्र की भावना पुष्ट होती है तथा हम अपनी परम्परा की समावेशी दृष्टि के निकट होने है।'' [18] कई मायनों में वे अपनी रुचि और सरोकार से ऊपर उठकर समकालीन हिन्दी कविता तथा अन्य कलाओं को समझने–समझाने तथा

कविताओं के मूल्य और आशाय स्पष्ट करने के लिए नए-नए औजार स्थापित किए। वे सिर्फ आलोचना के नए-नए औजार ही स्थापित नहीं किए बल्कि कई बार उन्होंने स्थापित-सिद्ध मूल्यों का सजग विरोध भी करते है। अशोक वाजपेयी एक आलोचक के रूप में जिस समय अधिक मुखर तथा सक्रिय रहे वह समय दरअसल अशोक वाजपेयी के लिए कठिन समय था या कहें उथल-पुथल का समय था। विभिन्न प्रकार के आरोप प्रत्यारोप दबाव से जूझ रहे थे फिर भी वे डटे रहें, और लिखतें रहें। कृष्ण गोपाल वर्मा ठीक ही कहते हैं- 'अशोक ने आलोचनाओं को बढ़ाते हुए दोहरी जिम्मेदारी अपने कंधो पर ले ली- एक ओर वे उन दिनों के बुजुर्ग कवियों की 'अप्रासंगिक', 'तनावहीन', 'सपाट', तथा 'आत्मतुष्ट' काव्यात्मकता पर हमला कर रहे थे। (देखे 'फिलहाल' में उनकी अज्ञेय पर दो 'गुस्ताख प्रतिक्रियाएँ') तो दूसरी ओर नयों की, युवा कवियों की 'मानवीय दरिद्रता ' की और ध्यान दिला रहे थे। अशोक यहाँ नए-पुराने का इटंर-फेस जैसा बना रहे थे। यहाँ अशोक की पसन्द थी, जिद थी, शौक थे, जो दृढ़ता के साथ रखे गए : जिन्ह 'कुछ पूर्वग्रह' कहकर वे आलोचना को 'हस्तक्षेप' में रूपांतरित कर रहे थे - 'फिलहाल' में याराना ठिठोलियाँ होते हुए भी यह दृढ़तापूर्वक स्थापित किया गया है कि आलोचना 'उदासीन' तटस्थ या पूर्वग्रहहीन नहीं हो सकती। [19] अब तक अशोक बाजपेयी की हिन्दी और अंग्रेजी में तेरह आलोचना पुस्तकें आ चुकी हैं—

फिलहाल,राजकमल प्रकाशन,नयी दिल्ली- 1970

कुछ पूर्वग्रह, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली- 1986

समय से बाहर, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर-1994

कविता का गल्प, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली - 1996

सीढ़िया शुरू हो गयी हैं, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली - 1996

बहुरि अकेला, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली - 1999

कभी कभार, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली - 2000

रजा, अंग्रेजी, रवि कुमार, पैरिस - 2002

पाव भर जीरे में ब्रह्मभोज, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली - 2003

सेवेन: कण्टाम्पोरेरी इण्डियन आर्टिस्टस, अंग्रेजी रवि कुमार पैरिस -2003

आत्मा का ताप, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली- 2004

पैशन, अंग्रेजी, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली - 2005

रजा: ए लाइफ इन आर्ट, अंग्रेजी आर्ट एलाईव गैलरी, नयी दिल्ली - 2007

यहाँ से वहाँ, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली - 2011

इन सबके अलवा कवि अशोक वाजपेयी की कई आलोचना संचयन भी हैं -

मेरे साक्षात्कार, किताब घर, नयी दिल्ली - 1998

कवि कह गया हैं, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली - 2000

चुनी हुई रचनाएँ, सम्पादक मदनसोनी, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली - 2001

सबसे आह्लादित करने वाला तथ्य यह है कि एक कवि के रूप में अशोक वाजपेयी अपने समकालीनों द्वारा कितना भी आरोपित-आलोचित या अवहेलित रहे हों मगर एक आलोचक के रूप में वे सभी द्वारा सराहनीय और सर्वजन अभिनन्दित रहे हैं।

सम्पादक के रूप में:

अशोक वाजपेयी कवि और आलोचक के साथ-साथ एक सफल सम्पादक के रुप में भी समकालीन हिन्दी साहित्य में परिचित हैं। उनका सम्पादक बनने का सिलसिला वे जब दसवीं क्लास में पढ़ रहे थे तब से शुरू होता हैं। उस समय उनके स्कुल से पहली बार छपकर निकलने वाली पत्रिका 'अनामिका' का वह सम्पादक बने थे। फिर सिर्फ 17 साल की उम्र में अपने मित्र रमेशदत दूवे, प्रबोध कुमार और राजा दूवे से मिलकर 'समवत' नाम से एक पत्रिका निकाली थी जिसका वे

सम्पादक रहें। इस प्रसंग में अशोक वाजपेयी का कहना उद्धृत किया जा रहा हैं – 'हम दो–चार लोग थे जो कुछ नया करने का प्रयास कर रहे थे सागर में रमेश दत्त दूबे, प्रवोध कुमार जो प्रेमचंद के नाती थे और राजा दूबे। फिर हम लोगों ने एक पत्रिका निकाली 'समवेत' जिसके दो अंक निकले। पहला 57 में दूसरा 58 में मेरी उम्र उस समय 17 साल थी। उस पत्रिका में उस जमाने के सारे लेखकों ने लिखा। विद्यानिवास मिश्र, गिरिजा कुमार माथुर, प्रभाकर माचवे, शमशेर बहादूर सिंह केदारनाथ सिंह, अज्ञेय, राजेन्द्र यादव, मुक्तिबोध कमलेश्वर, शानी, भवानी प्रसाद मिश्र, नागार्जुन इत्यादि सबकी रचनाएँ छपी।' [20] इसके अलवा अशोक वाजपेयी पहचान, समवेत, पुर्वग्रह, समास जैसे पत्रिकाओं का भी वे सम्पादक रहें और बहुवचन तथा कविता एशिया जैसी अंग्रेजी पत्रिकाओं का वे संस्थापक सम्पादक रहें हैं। दैनिक हिन्दू (अंग्रेजी) पत्रिका का भी वे सम्पादक रहे हैं। इन सब पत्रिकाओं के सिवा भी अबतक अशोक वाजपेयी ने चौदह आलोचनात्मक पुस्तकों का भी सम्पादन किया हैं। बहुमुखी पतिभा के धनी अशोक वाजपेयी ने सम्पादन के क्षेत्र में भी स्थापित किया हैं।

संस्कृतिकर्मी तथा आयोजक के रूप में :

एक संस्कृतिकर्मी तथा आयोजक की छवि अशोक वाजपेयी के लिए अत्यन्त मनमोहक और आह्लादमय रहा है। वैसे तो कला का संस्कार अशोक वाजपेयी में पहले से ही था इधर सेटं स्टीफेंस और दिल्ली विश्वविद्याालय की दुनिया में आकर और विस्तार पा गया वे कहते हैं – 'मुझ में कला के संस्कार पहले से तो थे ही। सेटं स्टीफेंस में दुनिया एक दूसरे अर्थ में बड़ी हुई। दो साल मैं वहाँ पढ़ा और तीन साल मैंने दयाल सिंह कॉलेज में पढ़ाया। इन पाँच सालों में मैंने कलाओं में अपने को दीक्षित करना शुरू कर दिया। एक अपना ही विश्वविद्यालय चलाया जिसका एकमात्र छात्र मैं ही था। उन दिनों यहाँ कोई ऐसा कला–आयोजन

न था जिसमें मैं न गया होऊँ। दो ही शौक है किताबें खरीदने का और कला आयोजनों में जाने का। 1960 – से 1965 तक के कला–जगत में मेरी उपस्थिति अनिवार्य रही, बिल्कुल फनिर्चर की तरह'। [21] आई.ए.एस के रूप में भी अशोक वाजपेयी के जीवन में कला के प्रति प्यार और मुहब्बत थमे नहीं बल्कि यों कहा जाय कि उसमें और गति मिल गया। उनकी दूसरी पोस्टिंग महासमुंद में होती है वहा भी उन्होंने युवा लेखकों का शिविर आयोजित किया। फिर सीधी में भी उन्होंने एक लेखक–शिविर का आयोजन किया था जहाँ नामवर सिंह, काशीनाथ सिंह, मलयज आदि लेखकों ने भी भाग लिया था। कविता तथा अन्य कलाओं के सह–संबंध पर गंभीर आस्था के कवि अशोक वाजपेयी अपने अब तक के जीवन में अपने समकालीन कलाओं के परिरक्षण, अन्वेषण, नव–प्रवर्तन उन्नयन और प्रसार के न जाने कितने योजनाएँ बनाए और कार्यान्वित भी किए हैं। ध्रुव शुक्ल भी ऐसा ही कहते हैं – 'वे अपने काम को काफी मानकर बैठ जाने वाले लोगों में से नहीं हैं। कुछ और कर सकना चाहिए का संकल्प उन पर छाया हुआ है। नशा है जो उतरता ही नहीं। योजना बनाने और उनको सही नाम देकर अन्तिम परिणति तक पहुँचाने में उनके जैसा संस्कृतिकर्मी भारत में दूसरा नहीं है'। [22] कुल मिलाकर यह कहना अत्युक्ति न होगा कि समकालीन भारतीय संस्कृति का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं है जिस पर अशोक वाजपेयी का प्रत्यक्ष या परोक्ष छाप न पड़ा हो। सच्चाई तो यह हैं कवि गुरु रवीन्द्र नाथ के बाद वे अकेले बन्दा हैं जो संस्कृति के क्षेत्र में इतना कुछ किया है। दरअसल संस्कृतिकर्मी–आयोजक अशोक वाजपेयी और सर्जक अशोक वाजपेयी में कोई अन्तर है ही नहीं। वे आज के भारत के नम्बर एक संस्कृति कर्मी है। मकरंद परांजये का भी ऐसा ही मानना हैं– 'साफ तौर पर यह कहा जा सकता है कि वे भारत के नम्बर एक संस्कृतिकर्मी है। अशोक जी के पहले तक ऐसे किसी स्थान की कल्पना तक, किसी सरकारी अफसर के लिए अकल्पनीय थी। भारतीय

प्रशासनिक सेवा के किसी भी अधिकारी ने, संगीत और संगीतकारों, नृत्य और नृत्य कर्मियाँ, रंगमंच और रंग कर्मियाँ आदि के लिए, शायद उतना नहीं किया, जितना अशोकजी ने। जितने कवियों, फिल्मकारों और रंग कर्मियों की उन्होंने मदद की, उन्हें प्रोत्साहित किया उनसे मिले, और जितने आयोजन उन्होंने किए उसका ठीक-ठीक लेखा-जोखा रख सकना अत्यन्त कठिन होगा।'[23]

अशोक वाजपेयी ने मूलत: भारत भवन के जरिए देश-दुनिया भर के कवि कलाकार आलोचक, पत्रकार, संगीतकार, नृत्यकार अभिनेता आदि को जो पीठ दिए, मौका दिया यह हर समय, हर जगह, हरेक व्यक्ति के लिए कतई सम्भव नहीं है। हो सकता है यह सरकारी योजना के तहत हो, मगर इस तरह की सुविचारित योजनाएँ बनाना और हर सम्भव कार्यान्वित करना हरेक की बश की बात नहीं है। लगभग एक हजार से अधिक आयोजन हुए जिनमें से अनेक जैसे खजुराहों नृत्य समारोह, ध्रुपद समारोह, सारंगी मेला, भारतीय कविता समारोह, अन्तराष्ट्रीय ग्रैफिक द्वैवार्षिक, एशियाई कविता समारोह,कामनवेलथ थिएटर लेवोरटेरी, विश्व कविता समारोह आदि की देश भर में चर्चा हुई। विशेषत: मध्यप्रदेश सरकार के संस्कृति सचिव रहते हुए उन्होंने कलाओं की स्वायत्तता, बहुलता और स्वतंत्रता की सुरक्षा हेतु अनेक आयोजन किए हैं। अनेक कलाकारों को कठिन समय में उन्होंने आर्थिक मदद भी की है। एक संस्कृतिकर्मी तथा आलोचक के रूप में अशोक वाजपेयी के बारे में प्रयाग शुक्ल के सुर में सुर मिलाकर बस इतना कहा जा सकता है - 'उन्होंने साहित्यिक सांस्कृतिक जगत में एक घटनापूर्ण जीवन जिया है, और जी रहे हैं। न जाने कितने आयोजन उन्होंने किए हैं, न जाने कितने लोगों के निकट संबंध में आए हैं, न जाने कितनी दोस्तियाँ-दुश्मनियाँ उन्होंने बनाई हैं। न जाने कितने लोगों के दुख-सुख में शरीक हुए हैं, वह कितनी चीजों के लिए समय निकाल लेते हैं। इसका अचम्भा बहुतों को होता है। मुझे भी बराबर होता रहा है।'[24]

अशोक वाजपेयी की कविताएँ

'होनहार बिरवान के होत चिकने पात' वाली कहावत कवि, आलोचक, संस्कृतिकर्मी अशोक वाजपेयी के लिए लगता है सौ-फिसदी सच निकला कयोंकि विरासत में उनको भले ही शिक्षित, स्थापित और संस्कार सम्पन्न परिवार मिला हो, किन्तु देखा जाय तो एक व्यवस्थित साहित्यिक परिवार उन्हें मिला नहीं। देखिए कवि अशोक वाजपेयी इस बारे में क्या कहते हैं - 'मेरे मध्यवर्गीय परिवार में कविता या कलाओं की परम्परा थी ऐसा नहीं कहा जा सकता। काका अर्थशास्त्र में एम.ए. थे और विश्वविद्यालय में प्रशासक थे। नाना और मामा भी प्रशासक थे। साहित्य को परिवार में हिकारत की नजर से तो नहीं देखा जाता था लेकिन उनकी विशेष प्रतिष्ठा भी नहीं थी।' [25] फिर भी बाल्यावस्था से ही उनके अन्दर का साहित्यकार पंख फै लाने लगा था। छठवीं क्लास से ही अशोक वाजपेयी ने तुकबन्दी करना शुरू की थी, जो गणतन्त्र के स्वागत में लिखी गई थी। आठवीं क्लास में जब अशोक वाजपेयी थे तब उन्होंने गद्यगीत रचना की थी और वह गद्यगीत हरिहर प्रसाद द्विवेदी द्वारा प्रकाशित पत्रिका 'भारती' के किसी अंक मे छपी थी। जो दिनकर जी की कविता के ठीक नीचे छपा था और तबसे ही अशोक वाजपेयी का लेखक बनने की शुरूआत माना जा सकता है। अशोक वाजपेयी की पहली कविता जब वे तेरह बरस के थे तब 'धर्मयुग' मे छपी थो। और उन्हीं दिनों 'सारथी' पत्रिका जो द्वारिका प्रसाद मिश्रजी नागपुर से निकालते थे उसमें उनकी एकाध कविताएँ छपी थी। साथ ही 'वसुधा' पत्रिका जो जबलपुर से हरिशंकर परसाई और रामेश्वर गुरू निकालते थे उसमें अशोक वाजपेयी की आरम्भिक नई किस्म की कविताएँ छपी और परसाईजी से मिली शाबासी से उनको सर्वप्रथम कवि होने का भ्रम सच्चाई में बदलने लगा। दसवीं क्लास में पढ़ते वक्त अशोक वाजपेयी

अपने स्कुल से पहली बार छपकर निकलनेवाली पत्रिका 'अनामिका' में कविता के साथ-साथ छद्म नाम से नाटक और कहानी भी लिखे थे। इस प्रसंग में अशोक वाजपेयी कहते हैं - 'जब मैं छठी कक्षा में था तो शायद पहला गणतंन्त्र दिवस इसी वर्ष पड़ा था, यानी 1950। उस उपलक्ष्य में कोई चार पंक्तिया या तुकबंदियाँ मैंने लिखी थी। लेकिन इसको कविता की शुरूआत कहना हास्यास्पद-सी बात है। ये बालसुलभ तुकबंदिया थी। बाद में जब मैं आठवीं कक्षा में पहुँचा तो मैंने कुछ गद्य-काव्य जैसा लिखा जो कि ग्वालियर से हरिहर प्रसाद द्विवेदी की पत्रिका 'भारती' में छपा। जहाँ तक पहली कविता का सवाल है वह यदि मुझे ठीक याद है तो, द्वारिका प्रसाद मिश्र की पत्रिका 'सारथी' में छपी थी। इस पत्रिका में उन दिनों मुक्तिबोध, श्रीकांत वर्मा जैसे लोगों की रचनाएँ छपती थी। इसी के आसपास, यानी जब मैं 13 वर्ष का था तो मेरी एक कविता बंबई के साप्ताहिक 'धर्मयुग' में छपी थी। बाद में जब मैं दसवीं कक्षा में आया तो मैं स्कुल से निकलने वाली पत्रिका 'अनामिका' का संपादक बना। यह पत्रिका पहले हस्तलिखित रूप में निकलती थी लेकिन मेरे संपादकत्व के साथ इसका छपकर प्रकाशित होना तय हुआ। इसके पहले अंक में- जो कि उसका एकमात्र अंक मैंने दो कविताएँ, एक नाटक और एक निबंध लिखा। सामग्री का अभाव था इसलिए छद्म नाम से भी कुछ-कुछ लिखा। फिर हरिशंकर परसाई और रामेश्वर गुरु के संपादन में जलबपुर से 'वसुधा' पत्रिका आरंभ हुई और मैंने उसमें छंद में ही कुछ आरंभिक कविताएँ लिखी। बहुत चिन्ताकर्षक छंदमयता उनकी नहीं थी।' [26]

अशोक वाजपेयी के कवि जीवन के प्रारम्भिक दौर में सन् सत्तावन में इलाहावाद में एक साहित्यकार सम्मेलन हुआ और उस सम्मेलन में अशोक वाजपेयी को एक युवालेखक के रुप में आमन्त्रित किया गया। उस समय अशोक वाजपेयी सिर्फ 17 साल के थे। इससे यह साबित होता है कि तब तक हिन्दी

साहित्य में अशोक वाजपेयी कुछ हद तक जगह बना चुके थे। इसी बीच अशोक वाजपेयी काफी संख्या में कविताएँ लिखते रहे और विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में छप रहे थे। उनमें से दो कविताएँ तत्कालीन हिन्दी जगत में काफी हलचल पैदा किए थे एक थी 'प्यार करते हुए सूर्य स्मरण' जो ज्ञानोदय में छपी थी, दूसरी अपनी 'आसन्न प्रसवा माँ के लिए तीन गीत'। इस प्रसंग में कवि अशोक वाजपेयी का कथन उद्धृत किया जा रहा हैं – 'जनवरी–फरवारी, 1958 में रघुवीर सहाय ने 'कल्पना' में लगातार मेरी तीन कविताएँ, बिना किसी परिचय के, छापी और दिसम्बर, 1958में इलाहावाद में आयोजित प्रख्यात साहित्यकार सम्मेलन में सबसे छोटी उमर का साहित्यकार शामिल हुआ। मन में दबी हुई और अबतक अविवक्षित इच्छा ने आकार लेना शुरू किया कि मुझे, जो भी हो जाए, कवि होना है यानी जीवन का एक मूल लक्ष्य कविता लिखना है। यह भरोसा भी होना शुरू हुआ कि यह लक्ष्य पाना सम्भव है।' [27]

अशोक वाजपेयी के अब तक तेरह काव्य–संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। जैसा कि काफी कम उम्र में ही अशोक वाजपेयी ने कविता लिखना शुरू किया और विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित भी हुएँ और एक तरह से हिन्दी कविता में हलचल मचाने में भी सक्षम रहें। अशोक वाजपेयी का पहला कविता संग्रह 'शहर अब भी संभावना है' उनके पच्चीस वर्ष की उम्र में सन् 1966 में भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित होता है। इस संग्रह में कुल सत्तावन कविताएँ संकलित हैं, जो मूलत: कवि के 16 से 24 वर्ष के बीच लिखी गई कविताएँ हैं। इस संग्रह में संग्रहीत लगभग सभी कविताएँ सागर में ही लिखी गई हैं और एक छोटे शहर सागर क जीवन छवियाँ इन सब कविताओं में प्रतिफलित हुई हैं। जैसा कि अशोक वाजपेयी कहते हैं – "जो लोग मेरे पहले कविता संग्रह से जानते है 'शहर अब भी सम्भावना है'की अधिकांश कविताएँ एक छोटे शहर के भूगोल की कविताएँ हैं।'[28]

वैसे तो इस संग्रह का नाम विज्ञप्त हो गया था 'घास के कपड़े पहनकर' लेकिन नामवर सिंह के सलाह पर बाद में 'शहर अब भी संभावना है' हो गया। एक युवा कवि के उमंग और मात्राधिक उत्साह का प्रभाव प्रस्तुत कविता-संग्रह में अवश्य रहा है। अशोक वाजपेयी कहते ह - 'काफी सख्ती से तब तक लिखी कुल लगभग डेढ़ सौ कविताओं में से 57 कविताएँ मैंने पहले संग्रह में रखी। नाम विज्ञप्त हो गया था घास के कपड़े पहनकर लेकिन बाद में वह बदलकर, जहाँ तक याद है कि श्री नामवर सिंह की सलाह पर 'शहर अब भी सभावना है' हो गया।' [29] यह संग्रह अत्यन्त महत्वपुर्ण इसलिए भी है कि यह संग्रह जब आया तब अकविता का उन्मेष काल था। कविता विशेषकर हिन्दी कविता एक संकरी और रूढ़ गली से गुजर रही थी तब अशोक वाजपेयी 'एक आदिम कवि का प्रत्यावर्तन' का विवाद करते हुए शहर अब भी संभावना है का जयघोष किया था। प्रस्तुत कविता संग्रह में अशोक वाजपेयी शिल्प की जिद्भरा नवीन प्रयोग करते हैं। कविता इस तरह लिखा जाए कि अलग से कोई भी कविता की पंक्ति न लगे पर सब पंक्तियाँ मिलकर अकाट्य रूप से कविता बने। जैसे कि 'एक कविता क्रम' शीर्षक कविता में देखा जा सकता है। बिम्ब-प्रतीक-प्रधान इस कविता में कवि ईश्वर, प्रेम और सम्बंध आदि पर प्रश्नाकुलता को रेखांकित करते हैं। जब समाज से एक तरह से मानवीय रिश्ता, ममत्तबोध आदि गायब हो चुके थे ऐसे समय में अशोक वाजपेयी का यह काव्य-संग्रह आया जिसमें माँ, पिता, भाई, बहन और प्रेयसी भी अपने निजत्व की आलोक में दीप्त। दरअसल इस निजत्व में सार्वजनीनता इस तरह से घूला-मिला है जिसे अलग-अलग देखना भी संभव नहीं है। इस संग्रह में माँ पर केन्द्रित छः गीत हैं। माँ इन में आसन्न-प्रसवा है, दैनन्दिन में पिसते हुए कहीं-कहीं आत्मघृणा से बोझिल, पददलित शरीर लिए, शोकगीत गाती हुई अपने अन्त की ओर अग्रसर होते हुए। इन

कविताओं में माँ यानी नारी की संवेदना को दर्शाया गया है जिसे नारीवादी अवधारणा के रूप में देखा जा सकता है –

'उसने दस्तक होने पर
दरवाजा खोला
और रामायन के पाठ को बीच में ही छोड़कर
चली गई
जैसे बच्चों के लिए दुध गरम करने।
वहाँ मृत्यु के चिकने-चुपड़े भवन में
क्या वह एक नीरव स्त्री
गाती होगी काया की अमरता का गान
या वहाँ भी चुप बैठी होगी
गरम दुध से भरा गिलास लिये ?' [30]

पहली काव्य-कृति होते हुए भी शैली और भाव व्यंजना की दृष्टि से काफी विविधतापूर्ण यह संग्रह अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है। हा: यह अवश्य हुआ है कि उनकी शुरूआती दौर की कविताओं में भावुकता का वर्चस्व रहा है। कुछ कविताएँ इस संग्रह में कवि ने अपने नाते-रिश्तेदारों को संबोधित करते हुए लिखी हैं जहाँ मानवीय-रिश्ता तथा ममत्वबोध आदि की गहरी संवेदनशीलता मौजूद ह। कुछ कविताएँ संगीत, कला, चित्र स्थापत्य आदि से संबंधित हैं जिन्हें कवि ने साहित्य के अनिवार्य पड़ोस के रूप में देखा है। एक तरह से समकालीन हिन्दी कविता के धारा के विपरीत ऐन्द्रियता का खुला इजहार करते हुए कई प्रेम कविताएँ भी प्रस्तुत सग्रह में शामिल हैं। जिनमें ऐन्द्रियता का खुला इजहार किया गया है जहाँ देह अत्यन्त आवेगमयी, सौन्दर्यमयी और स्वत: जीवन्त इकाई हैं। फिर भी कुछ ऐसे कविताएँ है

जिन्हें प्रेम कविताएँ कह सकते हैं, जिसमें श्रृंगार एक भावना के स्तर पर अभिव्यक्ति पाता है। उदाहरणार्थ 'अंत तक' शीर्षक कविता में—

'उस क्षण तक जीने देना मुझको
जब मैं और वह प्रियंवदा
एक डूबते पोत के डेक पर
सहसा मिलें।
दो पल तक न पहचान सकें एक दूसरे को,
फिर मैं पूछूँ :
कहिए , आपका जीवन कैसे बीता ?
मेरा..... आपका कैसा रहा ?
मेरा.....
और पोत डूब जाए।'' [31]

कुल मिलाकर 'शहर अब भी संभावना है' की दुनिया प्रेम, कलाओं, नश्वरता और अनश्वरता की दुनिया है, जहाँ रागात्मकता प्रधान है।

सन् 1966 में प्रकाशित अशोक वाजपेयी का पहला काव्य-सग्रह 'शहर अब भी संभावना है' के एक लम्बे अन्तराल के बाद यानी अठारह वर्ष बाद सन् 1984 में उनका दूसरा काव्य-संग्रह 'एक पतंग अनन्त में' राजकमल प्रकाशन से प्रकाशित होता है। कुल मिलाकर 53कविताएँ इस संग्रह में संग्रहित हैं। भाव-विचार और शैली की दृष्टि से यह कृति अधिक वैविध्य और नयापन से समृद्ध है। इस संग्रह में कवि अशोक वाजपेयी की कोशिश यह रही कि अनुभवों, दृष्टियों, विचारों और सरोकारों की एक बड़ी विविध और समृद्ध दुनिया कविताओं में सहेजा-समेटा जाय। दुनिया, समय और समाज में कविता की जो अलग जगह है उसे रौशन करना और उसकी जगह निश्चित करना एक कवि की जिम्मेदारी है। अपनी कविताओं के

माध्यम से अशोक वाजपेयी प्रस्तुत संग्रह में उस जिम्मेदारी को निभाने का भरसक प्रयास करते हैं। प्रस्तुत संग्रह की कविताओं के बारे में रघुवीर सहाय का कहना हैं– 'एक पतंग अनन्त में कई बार पढ़ गया हूँ। हर बार एक नई कविता पर ध्यान ठहरा है। जिस पर पहले नहीं ठहरा था। यह हर बार कवि से नई पहचान होने जैसा है। वास्तव में ये कविताएँ पाठक से धीरे धीरे खुलती हैं। इनमें अभी तक की हिन्दी कविता की प्रतिध्वनियाँ भी हैं परन्तु हर प्रतिध्वनि में एक नई गुँज है जो कवि की अपनी है। जीवन के रहस्य की जिज्ञासा इन कविताओं में प्रकट हुई हैं परन्तु जिज्ञासा को आधार कविता के रागात्मक संबंध से उसके अपने संसार से, ही मिला है, किसी बाहरी प्रेरणा से नहीं।' [32] प्रस्तुत काव्य संग्रह में अशोक वाजपेयी यह भी कहना चाहते हैं कि कविता के भुगोल में हर मार्मिक और मानवीय आवाज के लिए जगह होना चाहिए । इस प्रसंग में कवि अशोक वाजपयी का कहना हैं – 'हमारी दुनिया, समय और समाज में कविता की अपनी अलग जगह है और उसे रौशन करते रहना भी एक जरुरी जिम्मेदारी है क्योंकि कविता सच्चाई को ऐसे ढंग से खोजती–बखानती है कि वह अपनी आत्मीय और अन्तरंग अद्वितीयता तुरन्त स्थापित कर लेती है। मेरी यह धारणा भी पुष्ट हुई कि कविता के भुगोल में हर मार्मिक और मानवीय आवाज के लिए जगह है, भले वक्ती तौर पर किसी खास दृष्टि या विचार धारा या शैली का वर्चस्व या आतंक लगता हो। कविता मनुष्य का स्थायी प्रजातंत्र है।' [33] पहल संग्रह के जैसा ही इस संग्रह की कुछ कविताओं में भी परिवार एक मुददें के रूप में छाया हुआ है। प्रस्तुत संग्रह में कवि अशोक वाजपेयी कविता के समय में रहते हुए उसके पार जा सकने की युक्तियों पर पकड़ कुछ पक्की हुई–सी लगती है। साथ ही समय और अनन्त के युग्म ने भी एक बुनियादी काव्याभिप्राय का रूप लेना शुरू करते हैं। यहाँ अनन्त अधिकतर समय में ही व्यक्त होता है। समय

और अनन्त यहाँ परस्पर विरोधी नहीं है समय की असारता या नश्वरता को दर्शाते नहीं है। हालाँकि अनन्त में उसकी सार्थकता को प्रस्तावित करता है –

'आओ,

मुझे पहनो

जैसे वृक्ष पहनता है काल को

जैसे पगडंडी पहनती है हरी घास को

मुझे लो

जैसे अन्धेरा लेता है जड़ों को,

जैसे पानी लेता है चन्द्रमा को,

जैसे अनन्त लेता है समय को'। [34]

मृत्यु और अनुपस्थिति पर कुछ कविताएँ अब तक अशोक वाजपेयी लिख चुके थे मगर वह सिर्फ आभास मात्र था लेकिन इस संग्रह में वह एक गहरी छाया के रूप में उभरने लगता है लेकिन मानवीय जिजीविषा को बाधित या धूमिल नहीं बल्कि बरकरार रखते हुए। 'बच्चे' शीर्षक कविता की पंक्तियाँ —

'बच्चे फेंक रहे हैं

एक गेंद

मृत्यु के पार

इस उम्मीद में पिता

वापस भेजेंगे

बच्चे उड़ा रहे हैं

एक पतंग

अनन्त में

जानते हुए कि माँ उसमें खिलौने लटकाकर लौटाएगी।' [35]

प्रस्तुत काव्य-संग्रह में केलि, वह दिगम्बरा , आकाश की शैय्या पर, प्रणय निवेदन, वह नहीं कहती, लज्जारुण आकाश, वापसी आदि शीर्षकों से कई प्रेम सम्बंधित कविताएँ हैं। इन सब प्रेम कविताओं में ऐन्द्रिकता का रंग कुछ और गहरा होता हुआ दिखाई देता है और प्रेम में शरीर की उपस्थिति और ऐन्द्रियता का खुला और निस्संकोच स्वीकार भी है। स्वंय कवि अशोक वाजपेयी का मानना हैं — 'प्रेम कविताओं में ऐन्द्रिकता का रंग कुछ और गहरा हो उठा है और कामना की विकल तद्भवता घटती है प्रेम के तत्सम संसार में। प्राकृतिक उपादान अभी भी कविता के मूलाधार हैं। प्रेम में शरीर की उपस्थिति और सक्रियता का खुला और निस्सकोंच स्वीकार है। कविता की कोशिश नाम देने की है: वह नाम लेने से हिचकती या घबराती नहीं है।' [36] प्रेम, परिवार, मृत्यु, अनुपस्थिति से सम्बंधित कइ कविताएँ भी इस संग्रह में संकलित हैं। कविता का एक और सरोकार किसी छोटे सच को भी खराब नहीं जाना चाहिए इस दौरान अशोक वाजपेयी की इस संग्रह की कविता की दुनिया में गहरी जड़ जमाना शुरू करते दिखाइ पड़ता है। कवि अशोक वाजपेयी अपने अफसरी जीवन के भले-बुरे कुछ अनुभवों को भी कुछ कविताओं में लाने की कोशिश करते हैं। अफसरी जीवन के अन्तर्विरोध, उसकी सीमाओं और दयनीयता, उसकी बेवजह नाटकीयता आदि जैसे विषयों को अशोक वाजपेयी कविताओं में एक सामाजिक 'सच' के रूप में उपस्थापन करते हैं। प्रस्तुत काव्य-संग्रह में कई कविताएँ ऐसी भी हैं जो उनके समकालीन कविताओं पर एक तरह से आलोचना भी हैं। कवि अशोक वाजपेयी का भी मानना है कि कविता एक तरह से दूसरी कविताओं की आलोचना भी होनी चाहिए। वे कहत हैं - 'मेरी कविता को चालू कविता का एक तरह का 'क्रीटीक' भी होना है बल्कि कविता को सिर्फ कविता की तरह पढ़ना है। वह अपने समय की दुसरी कविता के 'क्रीटीक ' की तरह भी लिखी जाती है और उस रूपमें भी पढ़ी जाना चाहिए।' 37

अशोक वाजपेयी का तीसरा काव्य-संग्रह 'अगर इतने से' जो उनके दूसरे संग्रह के प्रकाशन के कुल दो वर्ष बाद सन् 1986 में राजकमल प्रकाशन से प्रकाशित हुआ है। इस संग्रह में कुल 72 कविताएँ संग्रहित हैं। इस संग्रह तक आकर कवि अशोक वाजपेयी के कविताओं का भूगोल कुछ और फैल जाता है। इसी संग्रह में 'विकल्प' शीर्षक कविता से उन्होंने सिर्फ विकल्प के बारे में नहीं बल्कि कविता के विकल्प में गद्य-कविता भी प्रस्तुत की हैं। उनके लिए यह सचमुच नया प्रयोग है। बिलकुल मामुली ढंग से आमतौर पर जैस बातें की जाती हैं उसी लहजे में आम आदमी के आम घटनाओं का जिक्र अशोक वाजपेयी अपने इन गद्य कविताओं में करते हैं। साथ ही यह भी कोशिश उनकी रही हैं कि इस तरह से बातचीत के लहजे में गहरी बातें भी की जा सकती हैं। प्रस्तुत संग्रह में उनके सन् 1958-1960 के दैरान लिखी गयी बारह कविताओं को भी शामिल किया गया हैं। 'शब्द' पर गहरी आस्था और 'अनन्त' के प्रति ललक कवि को पहले से ही रहा हैं लेकिन इस संग्रह तक आकर वह और विस्तृत तथा मुखर होता नजर आता है। कविता भाषा से बनती है और भाषा 'शब्द' से। कवि अशोक वाजपेयी समसामयिक परिदृश्य में शब्द का जो दुष्प्रयोग होता रहा है, जो अँधेरा छाया हुआ है उससे त्रस्त है, क्षुब्ध हैं। क्योंकि आगे चलकर यही आत्मा को भी घेरने की चेष्टा में है कवि शब्द की लौ जलाकर इससे मुक्ति दिलाना चाहते है, अंधेरा भगाना चाहते हैं। एक सजग और जागरूक कवि के नाते यह उनका वाजिव आकांक्षा हैं। 'अगर इतनें से' शीर्षक कविता में देखिए—

"आत्मा के अंधेरे को
अपने शब्दो की लौ उँची कर,
अगर हरा सकता
तो मैं अपने को

रात-भर

एक लालटेन की तरह जला रखता

अगर इतने से काम चल जाता-!' [38]

प्रेम-ऐन्द्रियता, जीवनासक्ति आदि मुद्दे इस संग्रह में कुछ नयी सघनता के साथ मौजूद हैं। मृत्यु यानी नश्वरता एक जबर्दस्त थीम बनकर उभरता दिखाई देता है इस संग्रह में, जैसा कि एक पूरे खंड का शीर्षक ही है 'खिलौने की तरह उठाएगी मृत्यु'। मृत्यु या नश्वरता को कवि अशोक वाजपेयी जीवन की समाप्ति के रूप में नहीं हालाँकि 'खिलौने' की तरह चित्रित करते हैं। अशोक वाजपेयी अपने इस काव्य संग्रह में 'पूर्वज' को एक शक्तिशाली मुद्दों के रूप में उपस्थापन करते हैं। समाज पर समय बोध बुरी तरह से हावी होने के कारण आज समाज आत्मकेन्द्रिक हो गया है, जहा दूसरों के बारे में हालाँकि अपने पूर्वजों को भी भूला बैठे हैं, इस विषय को कवि अपनी कविताओं म सहृदयता से व्यक्त करते हैं। सही अर्थ में देखा जाय तो यह है कि पूर्वजों का अवदान अस्वीकार करके बहुत आगे बढ़ना सम्भव नहीं है। सच्चाई तो यह है कि पूर्वजों की उपस्थिति का अहसास के साथ ही वर्तमान और अतीत की अटूटता का बोध गहरा होता है। इस सन्दर्भ में कवि अशोक वाजपेयी का विचार हैं- 'मुझे लगता है कि बीसवीं शताब्दी में जिस तरह का समयबोध हावी हुआ उसमें इस एहतराम की जगह कम ही रही कि हमारा बहुत कुछ हमारे पूर्वजों की वजह से है, उनका दिया हुआ हैं। मुझे आस्था का वरदान नहीं मिला। मैंने जब-तब पावनता की तलाश की है और ईश्वरहीन अध्यात्म को अपनी दृष्टि से एक उद्गम के रूप में लोकेट करने का यत्न किया हैं। लोकिन मुझे सबसे अधिक आकर्षित किया हैं पूर्वजता के तथ्य ने और उनके माध्यम से प्रकट होते निरन्तरता ने। देवताओं की दुनिया गवाँ देने के बाद मुझे लगा कि पूर्वज उनके स्थानापन्न हो सकते है। कौन जाने पूर्वज ही धीरे धीरे देवता बन जाते हैं: इतिहास

बढ़कर कभी पुराण हो जाता हैं। पूर्वजों की उपस्थिति के अहसास के साथ ही वर्तमान और अतीत की अटूटता का बोध भी गहरा हुआ:

हम अपने पूर्वजों की अस्थियों में रहते हैं।
हम उठाते हैं एक शब्द
और किसी पिछली शताब्दी का वाक्य विन्यास
विचलीत होता है,
हम खोलते हैं द्वार
और आवाज गूँजती है एक प्राचीन घर में कहीं।

देखा जाय तो भले ही कितने ही नए ढंग और प्रगल्भ दुस्साहस से हम कविता क्यों न लिखे, उसमें कहीं न कहीं पूर्वज बोलते हैं: "जिसमें पूर्वज नहीं बोलते हैं उस कविता के टिकाऊ होने में मुझे सन्देह होता है। मैंने थोड़ी-बहुत चेष्टा की कि मेरो कविता पूर्वजों की उपस्थिति और उनके प्रति अपनी कृतज्ञता को अपने स्वाभाविक गठन में ही ध्वनित और अन्तर्ध्वनित करे।' [39]

सन् 1988 में राजकमल प्रकाशन से प्रकाशित अशोक वाजपेयी का चतुर्थ कविता-संग्रह है 'तत्पुरुष'। इस संग्रह में 72 कविताएँ संकलित हैं। इस संग्रह की कविताओं में कवि अशोक वाजपेयी का ध्यान अधिकतर 'शब्द' पर केन्द्रित दिखाई पड़ता है। शब्द पर इतना विश्वास और आस्था है कि सब-कुछ नष्ट नहीं होगा कुछ तो बच ही जाएगा और बचेगा वही 'शब्द' हों। कवि उम्मीद करते हैं कि एक दिन सब कुछ नष्ट हो जाएगा, अनन्त में विलीन हो जाएगा जिस तरह पक्षी अनन्त में विलीन हो जाता है। फिर भी वनभूमि पर नीरव गिरनेवाले पंखों की तरह जैसी कि 'कुछ तो' शीर्षक कविता में—

'उड़ जाएगी सारी कविताएँ
अनन्त में विलीन हो जाने वाली पक्षियों की तरह

पर कुछ रुपक और शब्द बचे रह जाएँगे

वन भूमि पर नीरव गिरनेवाले पंखों की तरह।' [40]

शब्द पर भरोसा करनेवाले कवि अशोक वाजपेयी के वहाँ 'शब्द' सिर्फ शब्द नहीं है वह प्रतीक के रूप में प्रयोग होता है कहीं मनुष्य तो कहीं 'ब्रह्म'। यहाँ तक कि अशोक वाजपेयी शब्द यानी भाषा में अध्यात्म की खोज भी करते है। स्वयं कवि अशोक वाजपेयी का कहना हैं– ''मेरे यहाँ शब्द का प्रयोग प्रतीक के रूप में बहुधा है। भाषा अगर मनुष्य का सबसे क्रान्तिकारी आविष्कार है जैसी कि मेरी मान्यता है, तो उसकी कल्पना, साहस, अतिजीवता और अध्यात्म का सबसे ज्वलन्त और अमिट प्रतीक शब्द है। शब्द पर इस तरह के आग्रह के कारण जब तब मुझे नासमझी से कलावादी आदि कहकर लांछित किया गया है। पर ऐसे लांचन से यह सच्चाई अप्रभावित ही रहती है कि कविता में मेरा सबसे अधिक भरोसा शब्द पर है जो कि मनुष्य पर भरोसा का ही संस्करण है।' [41] समसामयिक कविताओं में प्रयुक्त शब्दावली के साथ–साथ कुछ नये–नये शब्दों का भी प्रयोग अशोक वाजपेयी अपने इस संग्रह की कविताओं में करते हैं। अब तक भूला दिये गये अनेक शब्दों को भी फिर से अशोक वाजपेयी कविताओं में जगह देते हैं। प्रस्तुत कविता संग्रह में आदमी, प्रेम, समय और अनन्त जैसे विषयों से सम्बंधित कई कविताएँ है जहाँ कवि अशोक वाजपेयी के अब तक के विचारों का और विस्तारण स्पष्ट है। यहा कुछ कविताओं का नाम भी लिया जा सकता है जो अत्यन्त महत्वपूर्ण कविताएँ हैं, जो विचारोत्तेजक है तलस्पर्शी है जैसे कि छोटी सी दुनिया, थोड़ा सा, अन्ततः, लड़ाई, मुझे चाहिए, अपनी–अंजली में आदि। उदाहरण के तौर पर देखिए 'छोटी सी दुनिया' शीर्षक कविता में किस तरह चार पंक्तियों में कवि अशोक वाजपेयी देश–दुनिया और जीवन सम्वंधी गंभीर चिन्तन को व्यक्त करते हैं –

'यही है, सुन्दर है

और है, असह्य भी

यही मेरी है इतने हर्ष से, यही द्रवित है इतने विषाद से।' [42]

जैसा कि प्रेम कविताओं में 'अतिरेक' अशोक वाजपेयी के यहाँ अब तक स्थायी भाव बन चुके थे प्रस्तुत संग्रह में भी मौजूद हैं। लेकिन यह प्रेम, पड़ोस, परिवार और अनन्त के पुनर्वास उन्होंने समकालीन कविता रुझान के विकल्प में या प्रतिरोध के रूप में ही प्रस्तुत करते ह। साधारण और आस-पास के जीवन छबियों का आकड़ा-आकलन भी कुछ कविताओं में कवि अशोक वाजपेयी उत्कटता के साथ चित्रित करते हैं। अशोक वाजपेयी का भी मानना हैं - 'साधारण और आसपास की जीवन छवियों का प्रवेश मेरी कविता इस दौर में अधिक तेजी और उद्दाम के साथ हुआ। मुझे लगा कि कविता अपनी सच्चाई निरे शब्दों से नहीं उनमें अन्तर्गुम्फित जीवन से विन्यस्त करती है। प्रथमत : और अन्ततः कविता अपना सत्यापन सीधे जीवन से ही पाती है।' [43] मृत्यु और अनुपस्थिति से जुड़ी हुई कुछ कविताएँ भी प्रस्तुत संग्रह में संग्रहित हैं, जिनमें पहली बार ऐसा देखा जाता है कि अशोक वाजपेयी कुछ हद तक उलझाव पूर्ण स्थिति में हैं।

'कही नहीं वही' राजकमल प्रकाशन से प्रकाशित कवि अशोक वाजपेयी का पाचवाँ-काव्य-संग्रह है जिसका 18 जनवरी सन् 1991 में पंडित कुमार गन्धर्व ने लोकर्पण किया है। 105 कविताओं का काफी बड़ा संग्रह है यह और इस संग्रह के लिए उन्हें सन् 1994 में साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित भी किया गया है। प्रस्तुत संग्रह में कवि और कविताओं का जो सम्बंध, कविता के माध्यम से भाषा के संयोजन से मूलतः कवि अपनी जगह के बारे में सोचते हैं। फिर अस्तित्व, मानवीय-स्थिति, नियति, उपस्थिति और अनुपस्थिति तथा नश्वरता आदि बिषय पर चिन्तन-मनन करते हैं और इन से संबधित विभिन्न प्रश्नों के उत्तर तलाशने की कोशिश कवि अशोक वाजपेयी करते हैं। कवि अपने भागदौर की सामाजिक-

राजनीतिक समय में अपनी झोली में बचे सपनों और प्रेम को लेकर शंकित- आहत होते हैं। उसे टटोलते है फिर ठिठककर सोचने को मजबूर होते हैं। मतलव कवि कहना चाहते हैं कि समस्याओं से किनारा काटने का नहीं उससे जूझते हूँए रास्ता निकालना चाहिए। इसी संग्रह में एक कविता है जिसका शीर्षक है 'यह समय है' प्रस्तुत कविता की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत किया जा रहा हैं —

'उन्मत्त भीड़ के रेलपेल से
पीछे छूटकर
अपने हाथों में थमाए झंडों को चुपचाप
किनारे रखकर
अपनी झोली में बचे सपनों और प्रेम को
टटोलते हुए
किसी सड़क-किनारे की बेंच पर बैठकर
सुस्ताने या पीछे हटने का नहीं
ठिठकने का समय है—' [44]

कुछ कविताएँ हैं जहाँ कवि अशोक वाजपेयी प्रेम और मृत्यु के बीच जगह की तलाश करते हैं। अशोक वाजपेयी के इस संग्रह की मृत्यु सम्बंधी कविताओं में मृत्यु अन्त तो है मगर उसक बाद भी जीवन है, अर्थात मरने के साथ-साथ सब कुछ समाप्त नहीं हो जाता है कुछ तो बच ही जाता है। मृत्यु सम्बंधी कविताओं में समयातीत को समय के ठोस प्रसंगों और छवियों में प्रतिस्थापन करने की चेष्टा कवि अशोक वाजपेयी की रही हैं। मृत्यु और अनुपस्थिति सम्बंधी इन कविताओं में देखा जाय तो कवि अशोक वाजपेयी का कुछ हद तक भीतिग्रस्त-सी स्थिति रही हैं। एक तरह मृत्यु-भय से आक्रान्त तथा विषादग्रस्त फिर जीने की अचुक आसक्ति, अदम्य लालसा भी हैं। गगनगिल से बातचीत में इस प्रसंग में कवि

अशोक वाजपेयी कहते हैं – "मृत्यु और प्रेम मेरी कविता में शुरू से रहे हैं। इधर विशेषत: अवसान और अनुपस्थिति के अंकुश कुछ अधिक गहरे हुए हैं। मेरे छोटे भाई की पत्नी, कविमित्र सोमदत्त और उसके बेटे आदि अनेक निकट के लोगों की मृत्यु ने और उधर जो सब कुछ ढहता–सा–नजर आता है उसने मुझे आक्रान्त किया और इस थीम पर तीसेक कविताएँ लिखी गयी जो इस संग्रह में हैं पर उन्ही में विषाद और आसक्ति का युग्म भी सबसे नाटकीय रूपों में प्रगट है। जैसा कि यीट्स ने कहा है कविता 'मान्यमेटंस आव् अनएजिंग इंचलैक्ट' रचती है पर वह बिना पैशन के और हमारे समय में, मुझे लगता है, बिना अन्तर्विरोध के सार्थक नहीं हो सकती। मेरे हिसाब से जिन्हें 'भयानक और सुन्दर ' एक साथ नहीं दीख पड़ता उन्हें कम दीख पड़ता है।'[45] इसी संग्रह में कवि अशोक वाजपेयी प्यास, चिड़िया, अनादि–अनन्त, पीछे–आगे, दीवार पर शब्द, सुबह, खेल, बच्चे आदि शीर्षक से कुछ गद्य कविताओं को भी शामिल किया हैं। शिल्प की दृष्टि से यह प्रयोग एक तरह से समकालीन हिन्दी कविता में रूढ़ हो गई शिल्प क विरुद्ध वैचारिक हस्तक्षेप कहा जा सकता है। विषय– वैविध्य और शिल्पगत विशेषताओं की दृष्टि से अशोक वाजपेयी का यह काव्य संग्रह अत्यन्त ताजगी भरा और जीवन्त संग्रह है। रामनारायण उपाध्याय प्रस्तुत कविता संग्रह की प्रशंसा कविता में व्यक्त करते हैं जो बिलकुल ठीक ही है –

'जैसे अनछुये चादँनी छूँ जाती है
बिना बोले भी सन्नाटा
समय की चट्टानों को चीर जाता है
जैसे मौन शब्द से अधिक मुखर होता है
ऐसे ही अशोक वाजपेयी की कविताएँ
'कहीं, नहीं, वहीं'

मनप्राण को झकझोर कर रख देतो है।।

जैसे पंछी घोंसले से उड़कर भी

घोंसले के आस-पास

अपनी परछाई छोड़ जाता है

ऐसे ही यह किताब

पढ़ लेने के बाद भी

समूचे दिन मन के आस पास मँडराती रहती है।' [46]

अशोक वाजपेयी की लम्बी कविता का संग्रह 'बहुरि अकेला' क्रमानुसार उनके छठवाँ कविता-संग्रह है। जो सन् 1992 में संस्कृति प्रतिष्ठान प्रकाशन से प्रकाशित होता है। यह संग्रह 'बहुरि अकेला' शीर्षक से इक्कीस कविताओं का एक समुच्चय हैं। मूलत : यह एक लम्बा शोकगीत और कवि अशोक वाजपेयी की अब तक के सबसे लम्बी कविता भी है। महान संगीतकार कुमार गन्धर्व की मृत्यु के बाद उनकी यादों में लिखी गई कविताएँ जहाँ कवि अशोक वाजपेयी उन महान संगीतकार के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए उनके अवदान को स्वीकारते है। 'मृत्यु' अशोक वाजपेयी की कविताओं में पहले से ही रहा है मगर इस संग्रह में कुमार गन्धर्व की मृत्यु के बहाने और बड़े फलक में देखने की कोशिश अशोक वाजपेयी ने की है। इसी तरह कई कविताएँ मल्लिकार्जुन मंसूर, रविशंकर, अलीअकबर खाँ के संगीत और स्वामीनाथन के चित्रों से प्रेरित हैं। इन कविताओं में एक कवि और साहित्यकार की दृष्टि से विभिन्न कलाओं को संवेदनशीलता के साथ देखने और सुनने का उपक्रम है। लगभग ऐसा ही विचार कुँवर नारायण का भी रहा हैं - 'बहुरि अकेला की कविताओं में या बनिस्बत उन कविताओं के जो हुसैन या स्वामीनाथन के चित्रों से प्रेरित हैं। भाव-भूमि एक सी है पर बिम्बों के गठन में एक सावधान अन्तर रखा गया है - बिम्ब अधिक सघन और स्पृश्य से लगते हैं। संयोग से हुसैन

और स्वामीनाथन ने कविताएँ भी लिखी हैं। वे किस तरह शब्दों को देखते हैं और एक कवि किस तरह उनके चित्रों को पढ़ता हैं, यह अध्ययन भी दिलचस्प हो सकता है।' [47] प्रस्तुत संग्रह की अधिकांश कविताएँ उत्कृष्टतम भारतीय संगीत को सुनते हुए, या चाक्षुष प्रस्तुतियों को देखते हुए,एक सुहृद साहित्यकार की मूलत: भावनात्मक प्रतिक्रियाएँ हैं। कवि अशोक वाजपेयी प्रस्तुत संग्रह में मृत्यु को जीवन के निषेध के रूप में न देखकर बहुत नाजूक संतुलन में जीवन के पड़ोस में स्थापित करते हैं। स्वंय कवि अशोक वाजपेयी का कहना हैं – ''वैसे हम मृत्यु को इस तरह से मरना नहीं है जैसे कि पूरी तरह से जीवन भी बिना मरे एक तरह से संभव नहीं है।' [48] कुछ इस तरह मिलता-जुलता विचार नन्द किशोर आचार्य का भी हैं – ''अशोक वाजपेयी भी इस दुनियावी जीवन में इसके सुख-दुख, इर्ष-विषाद, आशा-निराशा को स्वीकार करते हुए ही अपने होने की और उसके आनन्द की अनुभूति सम्भव करते हैं। मृत्यु को एक तथ्य के रूप में सहज स्वीकार भी वहाँ है, लेकिन अन्तत: जीवन के उससे बड़े होने की अनुभूति भी।' [49] उदाहरण के रूप में –

'कितना भी बड़ा हो मरना वह हारना है
हर बार
जैसे तैसे टूइँयाँ-जैसी भी जीने से।
जीना अनेक तुच्छताओं में जीना है।
जीते हुए हम लगातार पिण्ड छुड़ाते चलते हैं
उनसे जो मर जाते हैं।' [50]

प्रस्तुत संग्रह में कुमार गन्धर्व की मृत्यु सम्बंधी कविताओं में कवि अशोक वाजपेयी अपने शोकातुर-व्याथित हृदय को कुछ हद तक चैन दिलाने के साथ-साथ उन महान संगीतकार से संगीत और जीवन के बारे में जो कुछ भी सिख-समझ पाया था उस ऋण से भी मुक्त होने की आकांक्षा रखते हैं। प्रस्तुत काव्य संग्रह में जिजीविषा,

स्मृतियाँ, उत्सुकता, विकलता, जिज्ञासा, अवसाद, समकालीनता, निरन्तरता आदि का एक लगभग सांगीतिक सा-संगुम्फन हैं।

अशोक वाजपेयी का सातवाँ कविता संग्रह 'आविन्यों' सन् 1995 में राजकमल प्रकाशन से प्रकाशित हुआ है। आविन्यों दक्षिण फ्रांस के एक शहर का नाम है। रोण नदी के किनारे बसा हुआ यह एक पुराना शहर है फ्रेंच सरकार के सौजन्य से वहाँ रहकर अपना कुछ काम करने का न्यौता अशोक वाजपेयी को मिला था। तो वहाँ उन्होंने कुल 19 दिन रहें और इस दौरान पैंतीस कविताएँ और सत्ताइस गद्य रचनाएँ लिखी जो इस संग्रह में संग्रहित है। रोन नदी के किनारे बसा यह पुराना शहर जो कभी कुछ समय के लिए पोप की राजधानी थी। रोन नदी के दुसरी ओर आविन्यों का एक और हिस्सा है जो लगभग स्वतन्त्र है, नाम है वीलनब्ब ल आविन्यों-अर्थात् आविन्यों का नया गाँव या शायद कहना चाहिए नई बस्ती। वहाँ दरअसल फ्रेंच शासकों ने पोप की गतिविधियों पर नजर रखने के लिए एक किला बनवाया था। उसी में कार्थूसियन सम्प्रदाय का एक ईसाई मठ बना 'ला शत्रूज'। चौदहवीं सदी से फ्रेंस क्रांन्ति तक उसका धार्मिक उपयोग होता था। यह सम्प्रदाय मौन में विश्वास करता है सो सारा स्थापत्य एक तरह से मौन का ही स्थापत्य था।' [51] अशोक वाजपेयी को आविन्यों प्रवास के दौरान लिखी गई कविताओं में, लेखनी में निश्चित रूप से उस जगह का, परिवेश का प्रभाव दिखाई पड़ता है। अशोक वाजपेयी की इस संग्रह की कविताओं में पहलीवार एक तरह का आध्यात्मिकता अथवा आधिभौतिक बेचैनी का प्रवेश हुआ है। जबकि अशोक वाजपेयी के अबतक की कविताओं में 'ईश्वर' या 'परमसत्ता' संदिग्ध रूप में थे, अथवा डावाडोल-सी स्थिति में लेकिन आविन्यों में आकर वह शांत हो जाता है, स्थिर होता हुआ लगता है। जीवन के प्रति गहरे आसक्ति के कवि अशोक वाजपेयी यहाँ तक आकर एक गहरे आस्तिक के रूप में दिखाई देते है। परमसत्ता की संप्रभूता पर यकीन करने

लगते हैं। इस सन्दर्भ में निर्मल वर्मा का उद्धृत किया जा सकता हैं- "मठ के एकान्त बातावरण में जरुर ऐसा विशिष्ट रहा होगा, जिसने उन्हें मन के उन अज्ञात, अनछूए गलियारों में जाने के लिए उतप्रेरित किया होगा, जो दिल्लो की सत्ता के गलियारों (corridors of power) में दुर्लभ है। उन्नीस दिनों में पैंतीस कविताएँ और सत्ताईस गद्य-खण्ड लिखना वैसे भी अशोक जैसे बतरसी व्यक्ति के लिए मुश्किल होता, जो अपने स्वभाव या टेम्परामेन्ट में ज्यादा एकान्त के आदी नहीं है। अपनी जानी-पहचानी दुनिया से अलग छिटक कर उन्हें अचानक ये दिन मध्यकालीन नींद में सोई मॉनेस्टरी के सूने और निस्वब्ध सन्नाटे में गुजारने पड़े। ऐसे परिवेश की अनोखी छाया उसकी इन कविताओं पर पड़ना स्वाभाविक था। अशोक वाजपेयी स्वयं इस प्रभाव को स्वीकारते हैं - 'यहाँ रहकर ये रचनाएँ लिखी गई, वहाँ का सीधा प्रभाव उन, पर साफ है। ला- शत्रुज ने उनकी स्थानीयता, पदार्थमयता और रंगतों को लगातार प्रभावित किया है। उनका भूगोल एक तरह से आज का और कालातीत भूगोल है और उम्मीद है, उससे इन रचनाओं को उनका विशिष्ट अध्यात्म भी मिले।' [52]

अशोक वाजपेयी के प्रस्तुत काव्य संग्रह में भी कुछ कविताएँ प्रेम, रति और श्रृंगार से सम्बंधित हैं मगर अशोक वाजपेयी अबतक के प्रेम कविताओं की जो छवि थी उससे कुछ भिन्न कुछ फिका-फिका- सा। इस बारे में निर्मल वर्मा का कहना हैं - "कुछ कविताएँ जिनमें अब भी अभिसार श्रृंगार, विरह और परिणय के एरॉटिक प्रतीक आते हैं, वे कुछ गैर-आमन्त्रित अतिथि से जान पड़ते हैं, जैसे वे उनके पुराने संग्रहों की मदभरी कमनीयता के बाद का पीला-सा हैंगओवर हों। भारत की साहित्यक परम्परा में जो रागात्मकता देह और आत्मा की लीला-भूमि पर अपनी सहज ऊष्मा के साथ अभिव्यक्त हो जाती थी- एक दूसरे में धुलकर मेहंदी की तरह रच जाती थी, वही वह मध्यकालीन मोनस्टरी के सात्विक एकान्त के बीच कुछ

बेगानी सी जान पड़ने लगती है।'' [53] इस संग्रह की कुछ कविताओं में कवि अशोक वाजपेयी 'शब्द' पर अधिक आग्रह प्रकाश करने लगते हैं। शब्द की असमर्थता, शब्द के गौरव, शब्द की महिमा वर्णन करते है। यहाँ तक की प्रतीज्ञावद्ध-सा नजर आते है। वे कविता में कई समयों को अपने समय में अन्तर्भुक्त करने की कोशिश भी करते हैं। यहाँ तक आते-आते फिर लगता है कवि अशोक वाजपेयी अपने ही जंजीरों में कैद हो जाते हैं। कुछ कविताएँ ऐसे भी है जिसमें कवि स्त्रियों के दुख-यातनाओं का चित्रण करते हैं। 'शब्द' पर कितना भरोसा है कवि अशोक वाजपेयी को प्रस्तुत संग्रह के 'मुझे शब्द चाहिए'शीर्षक कविता की इन पंक्तियों में देखा जा सकता हैं -

''मुझे शब्द चाहिए
यह उम्मीद कि वे मेरे बाद भी रह पाएँगे
कुछ समय
मुझे चाहिए बीतने वाली नहीं खिलने वाली धूप
प्रार्थना नहीं चीख
सिसकियाँ, आँसु , हँसी
मुझे ऐश्वर्य नहीं शब्द चाहिए।'' [54]

अभिव्यजंना की दृष्टि से भी देखा जाय तो अशोक वाजपेयी के यह काव्य संग्रह उनके अन्य संग्रहों की तुलना में काफी सशक्त और पारदर्शीपूर्ण कविता संग्रह हैं।

कवि अशोक वाजपेयी के 'अभि कुछ और' शीर्षक कविता संग्रह सन् 1988 में प्रवीण प्रकाशन से प्रकाशित हुआ है। यह संग्रह कवि अशोक वाजपेयी के अनायास बन गया सा संग्रह हैं। क्योंकि पीछले चार वर्षो में लिखी गई कविताओं को संग्रहीत करके यह संग्रह बनाया गया है। वह भी तब जब प्रवीण प्रकाशन से ही उनके अब तक के सभी संग्रहों के एकत्र प्रकाशन होने को जा रहा था। उनके इससे

पहले का दो संग्रह 'बहुरि अकेला' और 'आविन्यों' विशिष्ट अवसरों से जुड़े हुए थे। कवि अशोक वाजपेयी के सबसे बड़े संग्रह 'कहीं नहीं वहीं' के बाद यह एक और संग्रह है। प्रस्तुत काव्य संग्रह की कविताओं में कवि अशोक वाजपेयी जीवन और भाषा, प्रेम-प्रकृति और सौन्दर्य, उपस्थिति और अवसाद जैसे मुददों पर अपने चिन्तत-मनन को सहेजने-समटने की कोशिश करते हैं। कवि शब्द यानी भाषा जिससे बनती हैं कविता और उस कविता के माध्यम से थोड़ा सा इतिहास रचना चाहते हैं। प्रस्तुत संग्रह की एक असाधारण कविता 'थोड़ा सा इतिहास' में से कूछ पंक्तियाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं —

'हमे थोड़ा सा इतिहास चाहिए
बस इतना कि
जैसे नलके में पानी न आ रहा हो
तो चूल्लू भर पानी से भी
मुह धोया जा सकता है।'[55]

शब्द के प्रति उदासीन और भाषा से लापरवाह समय में शब्द की अदम्यता, असमाप्यता और पवित्रता के साधक-समर्थक कवि अशोक वाजपेयो इस संग्रह में कुछ अधिक सक्रिय नजर आते हैं। 'कुछ तो शीर्षक कविता की पंक्तियाँ उद्धृत किया जा रहा हैं —

''सारे अँधेरे के बावजूद
कुछ तो रोशनी बचेगी
सच की रोशनी खून की रोशनी
जलकर भस्म हो गये जंगल में
छोटी-छोटी पत्तियों की हरी रोशनी।''[56]

इस संग्रह में अधिकतर कविताएँ प्रेम से सम्बधिंत हैं, जिनमें कवि निरी ऐन्द्रिकता से आगे चलकर प्रेम के कई तात्विक पक्षों पर भी आलोकपात करते हैं। इसके अलवा कुछ कविताओं में कवि नारी संवेदनाओं को मार्मिकता के साथ चित्रित करते हैं। कला और कलाकार से सम्बंधित कविताएँ भी इस संग्रह में मूलत: मृत्यु के बरक्स देखा-समझा गया है। आविन्यों प्रवास से सम्बंधित दो कविताएँ भी इस संग्रह में शामिल हैं। कुल मिलाकर अभि कुछ और शीर्षक कविता संग्रह में कवि अशोक वाजपयी उत्कट जिजीविषा और अदम्य अनुराग-चाहत के कवि के रूप में उभरते हुए दिखाई देते हैं।

कवि अशोक वाजपेयी के अबतक के महत्वपूर्ण कविता-संग्रहों में से एक कविता संग्रह 'समय के पास समय' राजकमल प्रकाशन से सन् 2000 में प्रकाशित हुआ है। इस संग्रह में एक लम्बी कविता 'शताब्दी के अन्त के कगार पर' शीर्षक से है जो सात खंडों में हैं और ताजे धोए दिये सा: इक्कीस कविताएँ शामिल हैं। अत्यन्त महत्वपूर्ण यह कृति अशोक वाजपेयी के साहित्यिक जीवन के एक मोड़ के रूप में देखा जा सकता है। 'शताब्दी के अंत के कगार पर' शीर्षक कविता के अन्तर्गत कवि कुछ ऐसे चरित्रों को सामने लाते हैं या कविताओं में जगह दी हैं जो अत्यन्त समसामयिक और यथार्थपरक है। कवि अशोक वाजपेयी इन कविताओं में उन चरित्रों को दर्शाया हैं जो आमतौर पर समकालीन कविताओं के दायर से बाहर ही रहें। कवि, कुम्हार, लुहार, बढ़ई, मछुआरा, कबाड़ी और कुँजड़ा जैसे समाज द्वारा अवहेलित और भूला दिये जाने वाले चरित्रों के दु:ख-वेदना और मर्मकथनों को कवि अशोक वाजपेयी बड़ी अत्मीयता के साथ दर्शाया हैं। कवि शीर्षक कविता में कवि कहते हैं:

''चकाचौंध और चौक के हाशिए पर
इतिहास के चिकने-चुपड़े भवन से बाहर

वे जो कुछ लोग खड़े हैं

मुझ कवि के साथ

अपनी-अपनी जगह पर

मैं उन पर सिर्फ एक खिड़की खोलता हूँ।'' [57]

प्रस्तुत संग्रह की कविताओं से यह स्पष्ट होता है कि अशोक वाजपेयी के जो कविता का भूगोल अबतक रहा है यहाँ तक आकर वह और फैल जाता है। कुछ नयी चीजें उसमें शामिल होता हैं। यों कहा जा सकता है उनकी कविता की दुनिया यहाँ तक कुछ अधिक पारदर्शी और सार्वजनिक ह, नए किस्म की बेचैनी और प्रश्नाकुलता के साथ। कवि अशोक वाजपेयी इस संग्रह की कई कविताओं में अपनी अबतक के किए-धरे पर आत्मालोचन तथा पुन:विचार करते हुए अपनी कमियों, गुस्ताखियों, गुणाहों का लेखा-जुखा प्रस्तुत करते हैं और ईमानदारी के साथ उसे स्वीकारते-कबुलते भी हैं। जिसे इस संग्रह की अत्यन्त सराहनीय एवं महत्वपूर्ण दृष्टि के रूप में देखा जा सकता है 'अगर वक्य मिला होता' शीर्षक उनकी कविता की कुछ पंक्तियाँ उदाहरण पेश है -

'अगर वक्त मिला होता

तो मैं दुनिया को कुछ बदलने की कोशिश करता।

आपकी दुनिया को नहीं,

अपनी दुनिया को,

जिसको सँम्भालने-समझने

और बिखरने से बचाने में ही वक्त बीत गया।' [58]

प्रस्तुत काव्य संग्रह की भूमिका में भी कुछ ऐसा ही कहा गया है- ''एक बार फिर अशोक वाजपेयी की आवाज नए प्रश्न पूछती, नई बेचैनी व्यक्त करती और कविता को वहाँ ले जाने की कोशिश करती ह जहाँ वह अक्सर नहीं जाती है। अब

उनका काव्य दृश्य सयानी समझ और उदासी से, सयानी आत्मलोचना से आलोकित है, उसमें किसी तरह अपसरन नहीं है – कवि अपनी दुनिया अपनी सारी अपर्याप्तताओं और निष्ठा के साथ शामिल है। कविता उसके इस अटूट उलझाव का साक्ष्य है।' [59]

'इबारत से गिरी मात्राएँ' शीर्षक काव्य संकलन का प्रकाशन सन् 2002 में वाग्वदेवी प्रकाशन बीकानेर से हुआ है। कवि अशोक वाजपेयी के यह दसवाँ कविता संग्रह हैं। प्रस्तुत काव्य संग्रह में कुल मिलाकर सत्तर कविताएँ हैं,जो आठ भागों में विभाजित हैं। इस संग्रह में अशोक वाजपेयी द्वारा 2000 से 2001 के बीच लिखी गई अधिकतर कविताएँ शामिल की गयी हैं। उनमें से बहुत सारी कविताएँ कवि क्रैकी और पैरिस प्रवास के दौरान लिखते है। वे अलग–अलग थीम को अलग अलग भाग में जगह देते है जो पाठकों को उनकी कविताओं को समझने में सहायक बन सकता है। 'प्रार्थना के लिए हमारे पास शब्द नहीं' शीर्षक से कुछ कविताएँ हैं जहा कवि कुछ और अधिक विश्वास के साथ शब्द पर भरोसा करते हैं। शब्द की अवाध आवाजाही को दोहराते हैं। शब्द कहीं भी और कभी भी जा सकते है। शब्द अर्थात कविता के लिए कोई भी सीमा अर्थहीन होता है चाहे वह सीमा समय का हो या विषय का, 'शब्द नहीं गिरते' शीर्षक कविता में वे कुछ यों कहते हैं –

"शब्दों को सिर्फ समय नहीं जगह चाहिए।
उन्हें चाहिए सुलगने के लिए सुनसान।
फैलने के लिए चाहिए हरा वितान।
समय घिरा अँटा है,
उनके पास जगह की तंगी है :
शब्द गिरते हैं धरती पर

समय पर नहीं।' [60]

'कहाँ है उसका नमक रोटियाँ कहाँ पकती हैं' शीर्षक कविताओं म कवि अपने जीवन में और अपने जीवन के भुले-बिसरे यादों को, स्मृति को दोहराते है मृतप्राय : भारतीय संस्कृति के कुछ पहलूऔ की पून:जीवित करने के साथ-साथ हम परायी संस्कृति को अपनाते हुए अपनी नीजि संस्कृति को किस कदर मिटा रहे हैं उस पर ध्यानाकर्षित करते हैं। कवि अतीत की ओर मूढ़कर देखना चाहते हैं शुरू कहाँ से हुई थी? और उस तह तक पहुँचे बिना हम आगे की और देख नहीं पायेंगे और इसलिए कवि अशोक वाजपेयी धरती यानी परम्परा को झुककर नमन करते हैं। कवि अन्य द्वारा अलक्षित रह जाने पर आक्षेप भी जाहिर करते हैं मगर वे कर्म पर विश्वास करते हैं जो उसे कभी- न कभी मुकाम तक जरूर पहुँचाएगा। उम्मीद की एक नयी वर्णमाला के अन्तर्गत कविताओं के माध्यम से कवि अशोक वाजपेयी उम्मीद की एक नयी वर्णमाला लिखना-चाहते हैं जहाँ संसार के सभी बच्चे अपनी इबारत बिना हिचक और डरके लिख सके। कवि बचे हुए को बीते हुए की तरह देखना चाहते हैं। उदा: देना है — युद्ध की विभिषिका का चित्रण कुछ यों करते हैं जो पत्थर दिल भी पलभर के लिए गीला हो जाए। सच कहा जाए तो कवि इन कविताओं में मानवीय संवेग कि गहराई को स्पर्श करने में सक्षम रहें हैं। 'आग और उसके वाद' शीर्षक कविता में कवि उन लोगों की करतुतों के बारे में बताते हैं जो अपने मुनाफे और मुकाम के स्थायित्व के लिए पहले आग लगाते है फिर बुझाते भी हैं। फिर भी कवि आखिरी उम्मीद बनाये रखते है कि हड्डियों की तरह अनजले बचे रहेंगे थोड़े से शब्द। उदाहरण के रूप में कुछ पंक्तियाँ —

'वे जानते हैं कि
उनके पास कुछ भी नहीं है
न प्यार, न नफरत

कुछ कर गुजरने का हौसला भर

जिसमें वे आगलगाते,

आग बुझाते हैं

और फिर चौंतरे पर बैठकर सुस्तासे हैं।' [61]

'सपने के परिवार के सच की बिरादरी के नहीं' में कवि अशोक वाजपेयी एक के बाद एक प्रार्थना करते हैं, कभी पोते की वर्षगाँठ पर कभी अपने लिए कभी दूसरों के लिए। इन प्रार्थनाओं में अहम बात यह कि कवि किसी मन्त्र या श्लोक द्वारा प्रार्थना नहीं करते हैं प्रार्थना करते है शब्दों से कविता के माध्यम से, इन प्रार्थना की खासियत यह हैं कि सबकुछ उपहार या वरदान की तरह मिले बल्कि यह कि अदम्य की कामना करते हुए बिना झुके या पछताये आगे बढ़े और स्वाभिमान के साथ जी सके और विरासत के रूप में देवता नहीं पूर्वज मिलें। 'प्राथना–दो' शीर्षक कविता पंक्तियाँ उदाहरण के लिए प्रस्तुत किया जा रहा हैं –

''हो सके तो

कम–से–कम एक बार ऐसा जीवन दो

जिसमें सिर झुकाकर घुटनों के बल रेंगकर कुछ न करना पड़े

जो स्वंय निश्शब्द प्रार्थना हो।'' [62]

अपने ड्राईवार सरनाम सिंह की अचानक मृत्यु पर जो कविता है, वहाँ कवि मृत्यु–संवेदना को बहुत ही मार्मिकता से उजागर किया हैं। हम चाहे जितना भी कोशिश करे इस कठिन सच से बचने के लिए मगर हम पल–पल उसी की ओर खिसक रहे हैं। फिर भी हम खिड़की खोले इन्तजार कर रहे हैं। मैं अपने गुणाह, अब अगर, ऐसा नहीं है, खाली हाथ, इलफ जैसे कई कविताएँ हैं जो अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा भाव–गम्भीर हैं। कवि अशोक वाजपेयी स्वंय के बहाने समसामयिक राजनैतिक तथा सामाजिक कटु सच पर रोशनी डालते है। कईबार कवि का भावविस्फूट जैसा होता

दिखाइ देता है कवि जीवन के जटिल और कठिन गुत्थियों को सुलझाना चाहते हैं। मगर आखिरकार उनके साथ कोई नहीं आता देखकर कवि झिझक कर अकेला ही चल पड़ते हैं यह जानते हुएँ भी कि समय कम पड रहा है। अँधेरे में चीजे झलकती है उनके नाम नहीं शीर्षक से एक पंक्ति की तीस कविताएँ हैं जो काफी भावोद्रेकपूर्ण और विचारोत्तेजक है। इसके अलवा 'समय के पंचांग से पिघलकर प्रेम के पंचांग में' शीर्षक के अन्तर्गत जो कविताएँ हैं उसमें कवि समय में ध्वसे-बिंधे फिर समय के पार निकल जाते हैं। नन्द किशोर आचार्य इसलिए प्रस्तुत संग्रह की भुमिका में कहते हैं - ''कविता काल सम्भवा होती है, काल बाधित नहीं। अशोक वाजपेयी की कविता इस बात से बखूवी वाकिफ है बल्कि यह भी जानती हैं कि कविता का समय से सम्बन्ध सर्जनात्मक तभी हो पाता है जब समय की सेवा में उपास्थित होने के बजाय कविता उसी के माध्यम से उस का अतिक्रमण करती है और अपना निजी सच बरामद करती है।'' [63] अन्त में अस्सीवीं वर्षगाठ पर चित्रकार हैदर रजा के लिए एक लम्बी कविता है 'रजा का समय' इस कविता में कवि मशहूर चित्रकार रजा के जीवन के अनछूएँ पहलू के साथ-साथ चित्रकला की बारिकियों से पाठकों को मूलाकात कराते है। साथ ही जीवन के गहन अर्थ सम्बंधी अथवा जीवन-दर्शन कई महत्वपूर्ण तात्विक दृष्टियों पर अपना गम्भीर चिन्तन की अभिव्यक्ति देते हैं। उदाहरण स्वरूप कुछ कविता पंक्तियाँ उद्धृत किया जा रहा हैं —

'समय पेड़ों और झाड़ियों से घिरा पत्थर का मकान नहीं है :
तुम उसमें रखी पत्थर की भारी मेज पर कभी बिछाते हो कागज,
कभी अपनी आकांक्षा,
कभी अपने जीवन का इकट्ठा हुआ सारा अवसाद,
लेकिन तुम रह नहीं पाते उसमें
क्योंकि तुम बसे हो अपने अमिट रंगो में

उनकी द्युतियों में

उनकी धरती के बीच स्पन्दित अँधेरों में।' [63]

कवि अशोक वाजपेयी का ग्यारहवाँ कविता संग्रह 'कुछ रफू कुछ थिगड़े' सन् 2004 में राजकमल प्रकाशन से प्रराशित हुआ है। पचपन कविताओं का इस संग्रह में कवि अशोक वाजपेयी अपने समसामयिक विभिन्न सामाजिक समस्याओं का चित्रण अपनी निजीपन के माध्यम से कुछ इस तरह करते हैं कि दोनों को अलगाना असम्भव-सा लगता है। कवि अशोक वाजपेयी प्रस्तुत संग्रह में समाज द्वारा अलक्षित रह गये तथा अनसुना किए गये अति दु:खी आर्त-पीड़ीत वर्ग के प्रति दयाशील होते दिखाई देते है उन सब के दु:ख दर्द को भी वाणी द्वारा दुसरों तक पहुँचाना चाहते हैं 'पथहारे का वक्तव्य' शीर्षक कविता में ऐसे ही भावों की अभिव्यक्ति देखा जा सकता हैं—

'सब कुछ गँवा देने के बाद भी जो कुछ बचा रहता है

मैं उसका कवि हूँ :

सूखी नदी की बालू में बहुत नीचे चली गई नमी

आँसुओं में धुँधला गया न सुना जा सका शब्द

पतझड़े ठूठँ वृक्ष में धीरे से सिर उठाती हरी अँकुआहट।' [64]

'उस बुढ़िया ने कहा' शीर्षक कविता में पक्षान्तर से कवि अपने जीवन के कुछ कटू अनुभव व्यक्त करते हैं जो एक सामाजिक सच्चाई भी है। आज का समय कुछ इस तरह का है कि आप दोस्तों पर भी भरोसा नहीं कर सकते है। इसके विपरीत आप दुश्मण पर जरुर भरोसा कर सकते हैं: उदाहरणार्थ कुछ कविता पंक्तियाँ पेश हैं —

'कैसा अजब समय आ गया है कि

दोस्तों के बजाय दुश्मनों पर भरोसा करना पड़ रहा है !

दोस्त तो कुछ नहीं करते,

न मदद न बचाव

उधार कभी लौटाते नहीं।

वीमार हो तो हाल पूछने आते नहीं।'[65]

'कुछ अनकहे देवकथन' 'कुछ सूक्तियाँ' और कुछ उलटबासियाँ शीर्षक से कवि अशोक वाजपेयी सर्वकालीन और सार्वजनीन मानव समाज को सही दिशा प्रदान करनेवाली गंभीर एंव तात्विक बातें की है–

'कभी–कभी दुख ऐसे आता है

जैसे सुख हो

कभी–कभी सुख में दुख ऐसे घुला होता है

जैसे हवा में गँध।'[66]

इस संग्रह में भी परिवार से सबंधित एक बहुत ही अच्छी कविता शामिल है– 'छब्बीसवीं बरसी' शीर्षक से। कवि अपनी कविता में अपनी स्वर्गवासी माँ को याद करते हैं। यहाँ कवि माँ कि स्मृति को ताजा करने के साथ– साथ कवि अपने पुराने गाँव / मुहल्ले का भी एकबार सैर करते हैं। और जीवन और मृत्यु दो अत्यन्त जटिल विषय पर अपना सार गर्वित विचार प्रस्तुत करते हैं। 'भले लोग' शीर्षक से एक कविता है इस संग्रह में जहा कवि का मानना है दुनियाँ में आज भी कुछ भले लोग मौजूद हैं जो पथहारे को सही राह दिखाते हैं और हायरान–परेशान व्यक्तियों को ऐन वक्त पर मदद भी करते हैं ऐसे लोगों के रहते कवि अशोक वाजपेयी देवताओं की जरूरत महसूस नहीं करते हैं –

'वे अक्सर जल्दी में होते हैं

वे भले होते हैं

लेकिन उनके पास बहुत वक्त नहीं होता है

अँधेरे में आदमी होने की काँपती लौ

आपके हाथो थमाकर गुमनामी में

वापस चले जाते हैं वे लोग

जब तक ऐसे लोग हैं

हमें देवताओं की कोई जरुरत नहीं पड़ती।' [67]

अशोक वाजपेयी के अन्य काव्य संग्रह के जैसे इस संग्रह में भी प्रेम, प्रकृति, शब्द आदि पर कविताएँ हैं। प्रस्तुत संग्रह में भी कवि सारे विनाश के बावजूद बचे रहने के लिए कविता को ही एकमात्र माध्यम मानते है। देखिए उदाहरण के रूप में उनकी 'विलाप' शीर्षक कविता की पंक्तियाँ —

'मैं विलाप करता हूँ

सिर्फ कविता में

क्योंकि उससे बाहर विलाप और स्वप्न दोनों के लिए

अब कोई जगह नहीं बची।' [68]

इसके अलवा कवि अपने आत्मसंघर्ष और आत्म समालोचनाओं पर भी कुछ कविताएँ इस संग्रह में शामिल करते हैं जो अत्यन्त महत्वपूर्ण और आदर्शपरक हैं। 'पैरीस में आठ दिन' शीर्षक से एक लम्बी कविता भी इस संग्रह में है जहा कवि पैरिस शहर एवं उस शहर के जन-मानस के रुचि-अभिरुचियों का कलात्मक जानकारी दी है उस के साथ ही स्वयं कवि अपने बारे में कुछ यों कहते हैं -

'मैंने सब कुछ किया:

बूढ़े-सयानों के लम्बे दुखड़े धीरज से सुने,

प्रेम छोड़े, नष्ट नहीं किए,

देवताओं के साथ नाश्ता किया,

शैतान के साथ सुस्वादु भोजन-

यात्रा से लौटने पर उपहार लाता रहा,

अँधेरे में डर से बचने के लिए उँचे स्वर में गाता रहा,

जितनी बन पड़ी मदद की औरों की,

जिन्होंने दगा किया उनसे बदला लेने की इच्छा के बावजूद

बदला लिया नहीं।'[69]

सन् 2004 में अशोक वाजपेयी का काव्य-संग्रह 'उम्मीद का दूसरा नाम' वाणी प्रकाशन से प्रकाशित होता है। यह उनका बारहवाँ काव्य संग्रह है जिसमें उनकी 2003 में लिखी नयी प्रेम कविताएँ एकत्र हैं। छोटी-छोटी मगर भाव-प्रवण 67 प्रेम कविताएँ इस छोटी सी संग्रह में संकलित हैं। इस संग्रह में अशोक वाजपेयी उम्मीद का ही एक प्रकार के रूप में या कहें उम्मीद का दूसरा नाम ही 'प्रेम' को स्वीकारते हैं। प्रस्तुत संग्रह की प्रेमकविताओं में प्रेम को व्यक्ति केन्द्रित मानते हुए भी मूलत: कहीं आगे जाकर यही प्रेम के कारण औरों से या संसार से भी व्यक्ति प्रेम करने लगते हैं जैसी उच्चादर्श सम्पन्न दृष्टि का उपस्थापन किया है। कवि इन सब प्रेम कविताओं में शरीर (देह) से ऊपर उठकर आत्मा तक, आत्मा से ब्रह्माण्ड, और ब्रह्माण्ड से मृत्यु के पार भी प्रेम की प्रतीक्षा करते हुए दिखते हैं। प्रेम की असम्भव संस्कृति में हिन्दी में इधर संभवत सबसे अधिक ऐन्द्रिय कविता लिखने वाले कवि अशोक वाजपेयी एक तरह से जिद् भरी मंशा से इस संग्रह में 'प्रेम' को और प्रेम कविताओं को रचा-बचाया है। इस सन्दर्भ में कवि अशोक वाजपेयी कहते हैं-सदियों से 'प्रेम' कविताओं का स्थायी भाव रहा है। यह रोचक तथ्य है प्रेम एक मानवीय प्रवृत्ति है, मानवीय सरोकार है, जो हमारी भारतीय साहित्य में सदियों से चली आ रही है मगर समकालीन हिन्दी कविताओं में, कवियों में यह एक तरह वर्जित सी माना जा रहा है जबकि इसे झुठलाया नहीं जा सकता। कवि अशोक वाजपेयी अत्यन्त साहसिकता के साथ इस भूला-वर्जित किए विषय को प्रस्तुत संग्रह की कविताओं में स्थान देकर बचना चाहते हैं। भारतीय

साहित्य में सदियों से चली आ रही परंपरा को अक्षुन्न रखना चाहते हैं। प्रस्तुत संग्रह की एक उल्लेखनीय कविता जहाँ कवि प्रेम के विराट-व्यापक रूप का इजहार करने के साथ-साथ प्रेम को ही जीवन का आधार माना है। यह प्रेम जीवन से है और जीवन के लिए है जीवन में भी और मृत्यु के पार भी —

''प्रतीक्षा करो मृत्यु में उसकी
क्योंकि वह जीवन है;
प्रतीक्षा करो मृत्यु के पार उसकी
क्योंकि वह आयेगी;
भस्म होगा सब कुछ;
देह, अस्थि, रक्त-मांस मज्जा-
पर भष्म नहीं होगा प्रेम
भस्म नहीं होगी उसकी प्रतीक्षा!
जब अस्थि फूल बिनने आयेंगे
तो पायेंगे कि अधजली अस्थियों के साथ
बचा है प्रेम और प्रतीक्षा!!''[70]

सैयद हैदर रजा, गोपाल घोष, जार्जकीट, नसरीन मोहमदी, मकबूल फिदा हुसैन, फ्रांसिस न्यूटन आदि देश-विदेश के कई जाने-माने कलाकार के कुछ रेखाचित्र भी प्रस्तुत संग्रह में रखा गया हैं जिसके कारण इस संग्रह का शान और बढ़ता हुआ दिखाई देता है। अत: कविता के साथ साथ चित्रकला से भी पाठको को परिचित होने का अवसर मिलता है, जो इस संग्रह की एक उपलब्धि माना जा सकता है।

कवि अशोक वाजपेयी के अबतक के अन्तिम और नवीनतम कविता संग्रह 'दुख चिट्ठीरसा है' राजकमल प्रकाशन से सन् 2008 में प्रकाशित हुआ हैं। कुल 71 कविताओं का यह संग्रह कवि अशोक वाजपेयी के अबतक के सभी काव्य

संग्रहों की तुलना में भाव-विचार की दृष्टि से सबसे प्रौढ़, वजनदार और विचारोत्तेजक संग्रह है। लगभग पाँच-दशक सें भी अधिक समय से कविता लिख रहे कवि अशोक वाजपेयी के कविताओं का जो विस्तृत भूगोल रहा है और हिन्दी साहित्य में जो जगह उन्होंने बनाई हुई है वह इस संग्रह में और अधिक सघनता, अत्यन्त मार्मिकता, आत्मविष्लेणात्मक और नये ढग से प्रस्तुत हैं। कविता और आलोचना के साथ-साथ समग्र साहित्य और कलाओं में बहुलतावाद के पक्षघर अशोक वाजपेयी इस संग्रह में भी कवि और द्वन्द्व, जीवन में साहित्य का सरोकार, प्रेम, मृत्यु,अनुपस्थिति, दुनिया, शब्द, पूर्वज, कलाएँ, घर-पड़ोस आदि तिषय को मूलत : प्रमुख स्थान प्रदान करते हैं। कवि अशोक वाजपेयी की कविताओं में स्थायी भाव के रूप में चली आ रही विशेषत: परंपरा का पुनरीक्षण और आधुनिकता के साथ उसे विस्थापित करना, मौजूदा संग्रह में भी थोड़ी-सी जगह देकर बचाना चाहते हैं, संजोये रखना चाहते हैं।

इस संग्रह में कई कविताएँ जैसे बर्बर और बचपन, तीन कायर गीत, पलटकर, लोग पवित्र को बचाते हैं, स्तुति, जब सभी, दुनिया बदलना, पलटकर पाचँ कविताएँ, आज तुम शब्द न दो, आदि में कवि समाज के सभी वर्गो के पीड़ित लोगों के दर्द को बड़ी सहृदयता से तथा आत्मीयता के साथ व्यक्त करते हैं। 'यह विलाप नहीं' शीर्षक कविता पंक्तियाँ उदाहरण के लिए उद्धृत हैं जहाँ कवि मनुष्य से मनुष्य के लिए प्रार्थना करते हैं कि कुछ करना है तो मनुष्य ही कर सकता है कोई और नहीं —

'यह विलाप नहीं है
एक नीरव प्रार्थना है।
जो किसी देवता को सम्बोधन नहीं है :
उसमें कोई शब्द भी नहीं हैं कातर या व्याकुल,

वह एक दिग्हीन चीख है

किसी पक्षी की जो दूर देस से लौटने पर पाता है

कि तिनका-तिनका जोड़कर बनाया उसका घाँसला

आँधी उड़ा ले गई है।' [71]

कवि अशोक वाजपेयी अपनी कविताओं में दुख-दर्द से ग्रसित और व्यथित लोंगों के प्रति कुछ शब्दों द्वारा सिर्फ हमदर्दी जताते हुए खामोश नहीं हो जाते हैं बल्कि अन्याय-अत्याचार और जुलूम करनेवाले और जो इन सबका अनदेखा करते हैं उन सब के विरोध में दमदार आवाज भी उठाते हैं। 'दुख ही जीवन की कथा' शीर्षक से एक लम्बी कविता में कवि अशोक वाजपेयी जीवन-जगत, सुख-दुख, और नश्वरता आदि जैसे जटिल और गंभीर मसले पर कवि स्वयं के माध्यम से बड़ी सरलता से और कलात्मकता के साथ अपना विचार प्रस्तुत करते हैं। यहाँ 'मैं' का साधारणीकरण अपने आप 'हम' में हो जाता है। और पाठक वर्ग के मानस-पटल में एक झंकार या लहर पैदा करने में जरूर सक्षम होते हैं तथा कुछ पल के लिए सोचने-विचारने को भी मजबूर करते हैं कुछ पंक्तियाँ उद्धृत हैं —

'क्या सब कुछ शुरू हुआ मिट्टी से

और खत्म होगा उसी मिट्टी में ?

हम सब में बार-बार रोती है मिट्टी,

वहीं चीत्कार करती है,

प्रार्थना करती है वही

और वही चुप हो जाती है अपनी बेबसी पर।' [72]

पस्तुत संग्रह में कुछ ऐसी कविताएँ भी हैं जहाँ अपनी हठी और जिद्दी स्वभाव के कारण आलोचित- आरोपित कवि आशोक वाजपेयी अत्यन्त सहज रूप में और बिना लाग-लपट के सामने आते हैं। मानो स्वयं उन्होंने धैर्य के साथ

आत्ममन्थन करके अपने को बिलकुल नये रूम में उपस्थापन करते हैं 'अपने जीवन के साथ कविता में बहुत मामूली फेर बदल करना चाह रहा हूँ , बिलकुल नाममात्र का। साथ ही वे ईमानदारी के साथ स्वीकारते है कि जीवन में जो कुछ भी किया वह काफी नहीं है। और सब कुछ सही था यह भी सम्पूर्ण रूप से सही नहीं हैं। गोया इस तरह से कवि अशोक वाजपेयी अपनी ढलती उम्र में अपनी अब तक के किए धरे पर फिर से एक बार हिसाब मिलाते हुए दिखाई देते हैं। 'देर सें कविता की पंक्तिया उदाहरणार्थ :

'शाम होने को है, पत्तियाँ झड़ रही हैं
जुटपुटा-सा है
रोशनी तेजी से घट रही है।
हमने जो रास्ता लिया- लम्बा था,
बहुत भटकने के बाद हमें ठीक दिशा मिल पायी:
सही जगह पर देर से पहुँचने का दुख लिये
अब हम निरुपाय खड़े हैं
एक निर्जन में जहाँ से लोग जा चूके है।'[73]

प्रस्तुत संग्रह में ग्यारह प्रेम कविताएँ भी शामिल हैं जहाँ कवि अशोक वाजपेयी प्रेम के गहन और दार्शनिक पहलूओं पर सांकेतिक तथा कलापूर्ण ढंग से विचार प्रस्तुत करते हैं। प्रेम ही प्रकृति के सृजनात्मकता का प्रेरणा स्त्रोत है। इन सब प्रम कविताओं में कवि देह यानी शरीर के वजाय आत्मा को और आत्मा से प्रकृति को प्रमुखता प्रदान करते हैं -

'वह सारे ब्रह्माण्ड को
अपनी ओर बुलाती है —
आकाश को, देवताओं को,

वनस्पतियों और नदियों को,

हरियाली,बारिश और जुगनुओं को,

पक्षियों को, पुस्तकों को,

सुतलियों और रस्सियों को:

फिर वह सबको करिने से

रख देती है

और उसके छूने से संभव होता है संसार।'[74]

कवि अशोक वाजपेयी इन प्रेम कविताओं में शिद्दत के साथ एहसास दिलाते हैं कि बिना प्रेम के कुछ भी संभब नही हैं, प्रेम के द्वारा ही सब कुछ सम्भव होता हैं। सच तो यह है कि अशोक वाजपेयी के इस संग्रह की प्रेम कविताओं में कामना–वासना का गंध तक नहीं है और न ही शरीर की उपस्थिति –

''उसी में है

पत्तियाँ और फूल,

उसी में किसलय और पराग

उसी में सब कुछ को हरा–भरा रखने का रसायन।''[75]

इन सबके अलवा प्रस्तुत काव्य संग्रह में साहित्य में खेमेबाजी, संगीत, अनुपस्थिति आदि जैसे मुददों पर भी कई विचार प्रधान कविताएँ शामिल हैं। मरणोत्तर:तीन कविताएँ शीर्षक कविताओं में कवि पारलौकिक जीवन के बारे में कुछ काल्पनिक छबि तथा विचार प्रस्तुत करते है। समग्रता से देखा जाय तो कवि अशोक वाजपेयी का यह कविता संग्रह अत्यन्त महत्यपूर्ण और सार संग्रह है।

समकालीन हिन्दी कविता और अशोक वाजपेयी

'जदि तोर डाक शुने केऊ ना आशे

तबे एकला चलोरे।'

(यदि तुम्हारे आवाज देने पर भी कोई न निकले तुम अकेले ही चल पड़ो)

समकालीन हिन्दी कविताओं में कवि, आलोचक, संस्कृतिकर्मी अशोक वाजपेयी की कविताओं का मूल्यांकन करते हुएँ कविगुरु रवीन्द्रनाथ की उक्त पंक्ति वरबस याद आ गयी। लगभग छप्पन-सत्तावन वर्ष पहले अशोक वाजपेयी कविता-प्रवेश करते हैं। इस दौरान हिन्दी कविता में आए परिवर्तनों, आन्दोलनों से अपने को सुपरिचित रखते हुए भी उनकी अपनी अलग राह रही है, जिस पर चलते आगे बढ़ने में वे सक्षम रहे ह। और इस मुकाम पर पहुँच चुके हैं जहाँ तक पहुँचना हर किसी की वश की बात नहीं है। स्वंय कवि अपनी हाले वया अपनी 'अब जब' शीर्षक कविता में कुछ यों करते हैं —

'अब जब मैं यहाँ तक आ गया हूँ

यहा जानने के फेर मै हूँ

कि कंहा जा रहा हूँ।

अपने पीछे मुझे रास्ते दिखते हैं

ज्यादातर घुँधले,

कुछ पगडण्डियाँ जिन पर

मेरे बाद कोइ नहीं चला।' [76]

कवि अशोक वाजपेयी सिर्फ हिन्दी ही नहीं, बल्कि विभिन्न भारतीय भाषाओं के साहित्यिक समाज तथा साहित्य ही नहीं, बल्कि कला और ज्ञान-विज्ञान के अनेक अनुशासनों से सम्बद्ध सर्जकों और रसिकों के समाज के बीच अत्यन्त

लोकप्रिय व्यक्तित्व हैं। तभी तो सुधीश पचौरी कहते हैं – 'वह मेरी ईर्ष्या हैं'। [77] बिल्कुल सही कहते हैं सुधीश पचौरीजी, आज के दौर में हिन्दी साहित्य के बहुत सारे कवि, लेखक, आलोचक हैं जिन लोगों का भी ईर्ष्या बन चुके है अशोक वाजपेयी। क्योंकि हिन्दी साहित्य में 'ईर्ष्या' करने लायक यदि कोई हैं तो उसमें अशोक वाजपेयी प्रमुख है। सुधीश पचौरी की निम्नोंक्ति से इस बात की पुष्टि होती है – ''ईर्ष्या को थोड़ी देर उतार कर रख दें तो ज्ञात कि अपनी जिद् में यह आदमी कई ऐसे काम कर गुजरा है जो पहले सम्भव ही नहीं थे और इस वक्त में भी अन्यों से संभव नहीं है।''[78] फिर ''साहित्य को खबर के योग्य बनानेवाला अशोक इतनी खबरें पैदा करता है कि वे छन–छन कर आती रहती है यहाँ तक कि हैड लाइनें लेती है।''[79]

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कवियों में अशोक वाजपेयी की पहचान अपने आप में विशिष्ट एवं उल्लेखनीय हैं। पीछले अर्द्धशती में कविता के वर्तमान और भविष्य को लेकर सोचनेवालों म अशोक वाजपेयी अग्रणी रहे हैं उनको या उनकी कविताओं को छोड़कर आधुनिक हिन्दी कविता इतिहास अधुरा रहेगा। शिवेन्द्र सिंह का भी ऐसा ही मानना है उनका कथन उद्धृत किया जा रहा हैं – ''कविता के वर्तमान और भविष्य को लेकर हिन्दी के जिन गिने–चुने लोगों की चिंता सर्वाधिक चर्चित रही है, उनमें आप अग्रणी हैं।'' [80] सिर्फ कवि ही नहीं, बल्कि समग्र जीवन की उच्छल अनुगुंजों के कवि, आलोचक, सम्पादक, संस्कृतिकर्मी अशोक वाजपेयी अपनी सक्रियता, सृजनशीलता, विचारों त्तेजना और मुखरता से हिन्दी साहित्य के परिदृश्य मे ंलगातार एक अलग उपस्थिति बने हुए हैं। क्योंकि उन्होंने अपनी कविता में हमेशा नई जमीन की खोज जारी रखी है। इसी प्रसंग में अरविन्द त्रिपाठी का कहना द्रष्टव्य हैं – 'वे सिर्फ प्रश्नों के कवि नहीं बल्कि समग्र जीवन की उच्छल अनुगूँजों के कवि हैं। उनकी कविता प्रश्न पूछने के बजाय उत्तर ढुढ़ँती है। जीवन

और समाज के ऐसे अनपूछे प्रश्नों के उत्तर, जिन्हें हमने अपनी कविता में पूछना प्राय: बन्द कर दिया।'[81] अशोक वाजपेयी अपनी राह पर चलने वाले निर्भय कवि तथा जीवन और समाज में आशावाद के कवि हैं। जरुरी है निष्पक्ष एवं उदार दृष्टि से देखने का, समझने का, क्योंकि उनकी कविताओं में चित्रित अनुभूतियाँ बहु आयामी एवं सूक्ष्म है, चौड़ा, विस्तिर्ण और गहरा है। वे सिर्फ सामाजिक संघर्ष की जद्दोजहद में फँसे कवि नहीं है, बल्कि जीवन के अनछूएँ अनुराग, अनदेखे अंधकार और अधखिले फूलों के साथ उन मुरझाएँ फूलों को भी प्यार करने वाले कवि हैं जिन्हें प्राय: लोग देख नहीं पाते। वे प्रकृति से लेकर मनुष्य, पृथ्वि से लेकर ब्रह्माण्ड, माता–पिता से लेकर अज्ञान पितरों, एक बच्चे की खोई हुई गेंद से लेकर जाड़े के दिनों में ठिठुरते बीड़ी पीते बूढ़े चौकीदार तक की खबर अपनी कविता से रखते हैं। उनकी कविता का संसार गहरे आवेग, उच्छल ऐन्द्रिकता, बेचैन अध्यात्म, अचूक कवि कौशल, अनाटकीय बौद्धिकता का संसार हैं, जिसे जानना एक भरे पूरे जिन्दादिल आदमी को उसकी सहजता और जटिलता, उसके विवेक और भावातिरेक में जानना है। अपने को कविता का निर्लज्ज पक्षधर कहने वाले कवि अशोक वाजपेयी हिन्दी के पीछले अर्द्धशती में कविता की समझ, जगह और संभावना बढ़ाने का अधिक जतन करने वालों में अग्रणी रहे हैं। कुछ ऐसा ही विचार अरविन्द त्रिपाठी का भी हैं – ''अशोक वाजपेयी की काव्यानुभूति की बनावट में सच्ची, खरी और एक सजग आधुनिक भारतीय मनुष्य की संवेदना का योग है जिसमें परम्परा का पुनरीक्षण और आधुनिकता की खोज दोनों साथ–साथ हैं। इस लिहाज से देखा जाय तो आजादी के इन पचास वर्षो की कविता का इतिहास जब लिखा जाएगा तो अशोक वाजपेयी उन थोड़े से हिन्दी कवियों में एक होंगे जिनकी कविता की रुह में भारतीयता की एक गहरी छाप मौजुद होगी। जहाँ आपको कविता की परंपरा का सूक्ष्म पुनरीक्षण, काव्य भाषा की परंपरा का अपने समय में अचुक

प्रयोग, अपनी संस्कृति, कला और सम्भता के प्रति सजग आधुनिक अनुराग और समर्पण की आस्था मौजुद मिलेगी।" [82]

हिन्दो साहित्य के वरिष्ट कवि अशोक वाजपेयी अपनी कविताओं में , अपनी चिन्तन में हमेशा नैतिक और ईमानदार रहे हैं। वे सिर्फ कविता लिखते हैं यह नहीं वे तो कविता लिखने के साथ साथ कविता के भविष्य को लेकर भी सीजते हैं उसकी समझ और कविता के प्रति लोगों की आत्मीयता कैसे बढ़ाया जाय उसके साथ ही कवि के समाज में प्राप्य स्थान को लेकर भी पहल करते हैं। स्वयं अशोक वाजपेयी कहते हैं – "रचना, आलोचना, सम्पादन और आयोजन सभी स्तरों पर मैंने अपनी शक्ति भर यही कोशिश की है कि कविता की समझ,उसके प्रति उत्सुकता और सजगता और उसका सामाजिक सम्मान बढ़े। अगर आज समाज में नायक राजनेता, अभिनेता और खिलाड़ी हैं तो उनके बरक्स कवि और कलाकार प्रतिनायक की तरह क्यों नहीं प्रक्षेपित किये जाने चाहिए? इसी, शायद 'हारी होड़' में बरसों से लगा हुँ।"[83] पलायन से अशोक वाजपेयी का कोई रिश्ता नहीं है। वे वैराग्य या वैष्णवों में से भी कुछ नहीं हैं। साहित्य जिनके लिए एकेश्वर है, एक आई०ए०एस० अधिकारी होकर भी अफसरी नहीं साधे साहित्य को साधा। साहित्य उनके लिए वाकई निजी जरूरत है, अनिवार्यता है, सहारा है। सुधीश पचौरी की भाषा में कहेत— ''यह आदमी साहित्य के लिए कुछ भी कर सकता है। जरुरत पड़ने पर वह जान भी दे / ले सकता है। यह साहित्य का पहला 'तत्ववादी' खाड़कू है।"[84] अशोक वाजपेयी का पहला काव्य-संग्रह शहर अब भी संभावना है, से लेकर अबतक प्रकाशित उनका अन्तिम काव्य-संग्रह 'दुख चिट्ठीरसा है' तक इस लम्बी काव्य-यात्रा से गुजरते हुए यह स्वतः प्रमाणित होता है। कविता के राजपथ या जनपथ को छोड़कर अपने द्वारा बनाए पगडंडी स चलने वाले कवि अशोक वाजपेयी अपनी अब तक की कविताओं में और आलोचना में कई ऐसे मुद्दें या

साहित्य के सरोकार को प्रतिस्थापन किया हैं जो उनके समकालीन कविताओं में न के बराबर दिखाई देता है और है भी तो उस अर्थ में नहीं जिस अर्थ मे कवि अशोक वाजपेयी प्रयोग करते हैं। इसी सन्दर्भ में कन्हैयालाल नंदन से बातचीत में अशोक वाजपेयी यों कहते हैं – "मैंने अपने लिए जिस तरह का कविता–संसार बनाने का इरादा किया, उससे इन सबके लिए जगह भी नहीं थी। इसलिए भी नहीं थी कि हिन्दी कविता का जो एक चालु मुहावरा है– कुछ चीजें जो छूट गई, मैं एक तरह से उन छूट गई चीजों का कवि हूँ। प्रेम छूट गया, कोमलता छूट गई, प्रकृति छूट गई – इनसे जो हमारा एक गहरा संबंध था वो छूट गया। पड़ोस छूट गया। समय से हम इतना आक्रांत हो गए कि अनंत छूट गया। तो जो छूटी हुई चीजें हैं कभी–कभी मैं सोचता हूँ कि जैसे यहाँ कूड़ा बटोरने वाले लोग आते हैं, सब लोगों के बाद कूड़ा बिखेरकर बहुत सारी चीजों को ढूँढ़ते हैं – उसी तरह मैं छूटे हुए, बिखरे हुए से अपने मतलब को चीजें बटोरता हूँ।"[85]

कवि अशोक वाजपेयी अपने समकालीनों से हटकर अपनी कविताओं में जिन मुददों को विचारधारा के रूप में प्रस्तुत करते हैं उनमें से उल्लेखनीय हैं – कला और साहित्य की स्वायत्तता तथा उसकी प्रजातांत्रिकता। अशोक वाजपेयी समाज में कवि लेखक और कलाकार को समुचित सम्मान दिलाने की कोशिश करते है और इसे अपना जीवन–संघर्ष के रूप में स्वीकार करते हैं, जों उनके समकालीनों के बीच दुर्लभ है। कृष्ण गोपाल वर्मा का मानना हैं – "मूलतः मनुष्य की हालत कविता की जरुरत काव्य मूल्यों की परख, अभिव्यक्ति के संकट, साहित्य विषय हैं। अशोक वाजपेयी बार–बार लौटते हैं अपनी मुहीम पर। इन टिप्पणियों, मसौदों, वक्तव्यों में उल्लेखित सामग्री से कविता, समाज, संस्कृति के संबर्द्धन के लिए पुख्ता घोषणा–पत्र तैयार किया जा सकता है। उनके पास सर्वग्राही नारे – कविता की वापसी, विचारों से विदाई, आलोचना का जनतंत्र, समय से

बाहर भी हैं। वे आवश्यकतानुसार मुद्दों को उछालते हैं, सनसनीखेज बनाते हैं। उनका एजेण्डा इन पच्चीस वर्षो में विशेष बदला भी नहीं है: कविता, समाज, संस्कति के अलावा आलोचना, बहुवचनीयता, लोकतंत्र आदि उनके जाने पहचाने पूर्वग्रह हैं। समकालीन परिदृश्य में यह एक प्रतिसंसार रचना है। एक तरह से विराट आधुनिक दृश्यालेख में जनपदीयता का निर्माण अपने व्याक्तित्व में वे लम्बी, सुदीर्घ लड़ाई के लिए आवश्यक आक्रमण लाए। भारतीय कविता के एक विशेष स्वर को विश्वस्तर पर प्रस्थापित-प्रचारित करने का बीड़ा उठाया और उसमें बहुत दूर तक सफल हुए।"[86]

अपने समकालीनों में से अशोक वाजपेयी को सबसे जुदा सबसे अलग करनेवाला और उनके जीवन के सबसे महत्वपूर्ण कार्य है-'प्रतिभाओं' की खोज। जिसके चलते अशोक वाजपेयी अभिव्यक्ति के खतरे मोल लेकर भी और स्वंय का अतिक्रमणता करते हुए भी उन्होंने बहुत सारे नयी प्रतिभाओं को नये कवियों को सामने लाया, छपवाया है। पहचान सीरीज इसका जीता-जागता उदाहरण है। इसका मतलब यह भी नहीं कि ऐरों-गैरों को स्थान दिया, जगह दिया इसके विपरीत उन्होंने सच्ची प्रतिभा के धनी जो अवसर की तलाश में थे उनलोगों को ही मौका दिया है। 'पहचान सीरीज' से पहचान पाये जितेन्द्र कुमार का कहना हैं - "जो जहाँ पहुँचे सो अपने बूते पर -कोई कीर्तन मण्डली बनाकर उन्हीं को पोसते रहने का स्वभाव का न तब था, न अब है। पहचान सीरीज से उन्होंने कुछ अज्ञातकुलशील युवा लेखकों को 'पहचान' दी और ओवरड्राफ्ट बढ़ाया।"[87] इस प्रसंग में अशोक वाजपेयी का कहना हैं— " लेखक और कलाकार को समाज में उसका योग्यस्थान मिले और मौलिक अधिकार की रक्षा हो, एक तरह से इसे ही आप मेरा जीवन-संघर्ष कह सकते हैं। एक ऐसे समाज में जिसमें तीन किस्म के लोग ही नायक माने जा रहे हैं यानी नेता, अभिनेता या खिलाड़ी, कलाकार, लेखक और बुद्धिजीवी को

वैकल्पिक नायक बनाने की कोशिश उस लड़ाई का हिस्सा है जो संस्कृति को बचाये रहने के लिए की जानी जरुरी है। हम अपने जमाने से कह रहे हैं कि साहित्य और कलाएँ महत्वपूर्ण हैं और उन पर ध्यान दिया जाना चाहिए और हम कलाकारों और लेखकों से कह रहे कि समाज में आपकी महत्वपूर्ण भूमिका है।[88] शब्दों को मनुष्य का सबसे अक्षय प्रतीक के रुप में मानने वाले कवि अशोक वाजपेयी की कविताओं में शब्द-संस्कार, शब्द की निरुपाधि प्रतिष्ठा और शब्द को एक पूर्णाङ्ग तथा रूपवान सत्ता के स्तर पर देखे जाने में मिलता है। मदन सोनी भी ऐसा ही कहते हैं- "अपने समकालीनों के बीच अशोक वाजपेयी की कविताएँ लगभग अकेली ऐसी कविताएँ जिनमें भाषा की अपनी आवाज इतनी विविक्त और प्रभावी है।"[89] स्वयं अशोक वाजपेयी का मानना हैं - "शब्द के प्रति लापरवाही और असंवेदना के समय में उस पर आग्रह समूची सर्जनात्मकता पर ही आग्रह हैं। शब्द मनुष्य का सबसे अक्षय प्रतीक हैं - और उसके बिना शब्दों का कोई अर्थ नहीं हो सकता।"[90]

अशोक वाजपेयी अपनी कविताओं में ऐसे बहुत सारे शब्दों को गढ़ते हैं जो उनके समकालीनों के बीच शायद ही कोई अन्य ऐसा कर पाता हो। भाषा स्वयं आकर अशोक वाजपेयी के पास अपने आविष्कार की माँग करती है। इसी प्रसंग में रमेश दवे का कथन उद्धृत किया जा रहा हैं - "अशोक वाजपेयी के पास भाषा स्वयं अपने आविष्कार की माँग करती हैं। अपने लेखन या काव्य में जितने शब्द अशोक जी गढ़ते है, शायद ही कोई अन्य ऐसा कर पाता हो। भाषा स्वयं अपनी प्रकृति में इतनी लचीली और बदलु स्वभाव की है कि वह कट्टरता बरदाश्त नहीं कर सकती। अधिकांश हिन्दीवादियों ने भाषा को इसी कट्टरता के कारावास में रखा था। अशोक वाजपेयी ने अपनी आलोचना और अपनी काव्य भाषा को यह सश्रम

कारावास समाप्त किया है। इसलिए मैं अपनी समझ में उन्हें रचना होने की संस्कृति में पहले भाषा होने की संस्कृति में देखता हुँ।"[91]

कविता और विचार का द्वन्द्व, उत्तर आधूनिकता की उपादेयता, घर-पड़ोस को कविता में जगह देना। यहाँ स्पष्ट रहे कि अशोक वाजपेयी के यहाँ पड़ोस शब्द एक व्यापक अर्थ में प्रयुक्त होते है, तथा एक काव्य सरोकार के रूप में आते हैं। इस विषय पर अशोक वाजपेयी का कहना हैं - "जैसे पड़ोस वैसे ही परिवार मेरी कविता में केन्द्रस्थानीय है। वह एक जगह भी है और सम्बन्धों की रंगभूमि भी। अगर कोई मुझे परिवार और पड़ोस का कवि कहे तो मुझे एतराज न होगा। कविता में परिवार के आने की परम्परा यों तो बहुत पुरानी है लेकिन कम-से-कम मेरे यहाँ वह एक तो मध्यवर्गीयता और दूसरे गालिब के प्रभाव से आया है। मैं परिवार में कम बोलता हूँ, बाहर ज्यादा : मेरी कविता में परिवार बोलता है बल्कि कई बार तो बाहर भी परिवार बनकर ही बोल पाता है। यह एक विडम्बना भले है पर उसका मेरी कविता के लिए हमेशा आशय रहा हैं। मैंने तो सार्वजनिक जीवन में कवियों का परिवार बनाने की भी कोशिश की एकाधिक बार लेकिन कामियाबी नहों मिली।"[92] शुष्क-हृदयहीन वातावरण में अशोक वाजपेयी ने प्रेम की धारा बहायी। प्रेम को ऐन्द्रिकता के साथ-साथ एक व्यापक दृष्टिकोण के तरह एक सरोकार के रूप में साहित्य में जगह दिलाया। जहाँ प्रेम एक व्याख्या-वस्तु के रुप में उपस्थित है, जहाँ प्रेम या रति एक भाव न होकर एक मूल्य है। अजीत चौधरी इस विषय पर अपनी राय व्यक्त करते हैं- "आज के घमासान में जहाँ सौन्दर्य-बोध के स्त्रोत तेजी से सूखते जा रहे है: जहाँ प्रेम को एकदम निजी अनुभूति मानकर व्यापक दृश्य से अलग किया जा रहा है या उसे निर्वासित करने की चेष्टा की जा रही है वहाँ प्रेम के लिए जगह तलाश कर उसे बचाए रखने को एक जरुरी हस्तक्षेर अशोक वाजपेयी की कविता ने किया है। इन कविताओं की ऐन्द्रिक चेतना की किरण देह युगल के

प्रिज्म से पार होकर प्रकृति के विराट वनवास पर बहुवर्गीय रंगों की आभा बिखेरती हुई विकीरित हो जाती है। इन प्रेम कविताओं में प्रेम–व्यापार के दौराण अपनी ऐन्दिक क्रियाशीलता के साथ प्रकृति एंव ब्रह्माण्ड अपने विविध रूपकों के साथ सहभागी होते हैं। प्रेम के लिए जगह तलाशती कविताओं व्यापार एंव उसकी प्रक्रिया के क्रमिक सोपानों को बड़ी खूबसूरती से पूरे ऐन्द्रिक सौन्दर्यबोध के साथ स्पर्श किया है।''[93] अशोक वाजपेयी के लिए राग–विराग और समर्पण के साथ–साथ प्रेम अपने आप में एक परम नैतिक कर्म भी हैं। वे कहते हैं—'' प्रेम अपने आप में एक परम नैतिक कर्म हैं। मनुष्य प्रेम से बड़ा कोई नैतिक कर्म कर सकता है। ऐसा मैं नहीं सोचता। दूसरा यह कि मैं एक तरह की समकक्षता, प्रजातान्त्रिक समकक्षता में विश्वास करता हूँ। मैं प्रेम में मुक्ति की भी कामना करता हूँ। समकक्षता और मुक्ति ऐसे दो नैतिक मूल्य हैं जिनमें मैं विश्वास करता हूँ तथा जिनके बिना प्रेम संभव नहीं है। प्रेम समर्पण के बिना संभव नहीं है, राग के बिना भी संभव नहीं है, लेकिन विराग के बिना भी संभव नहीं हैं। प्रेम में मुश्किल यह हैं कि इसका अनुभव दूसरे के अनुभवों के समक्ष विरुद्धों के सामंजस्य के अधिक निकट है। आप बिलकुल मृतप्राय हैं या आप बहुत उग्र और जीवन्त हैं, प्रेम से ये दोनों अनुभव मिल जाएँगे। प्रेम मनुष्य का केन्द्रीय अनुभव है, राजनीति या सामाजिकता आदि के अनुभवों में यह संभव नहीं है। इसलिए प्रेम परम राजनीति है क्योंकि उसमें विरुद्ध का भी उतना ही स्थान है, जितना राजनीति में नहीं होता है। अगर मेरे साथ नहीं है तो तू मेरा दुश्मन है राजनीति में। प्रेम में प्रेमी और प्रेमिका के बीच मैत्री भाव और उनके बीच शत्रता दोनों के लिए जगह है। एक तरफ रति दूसरी तरफ मृत्यु एक तरफ अनन्तता, दूसरी तरफ नश्वरता प्रेम में ही संभव है। इसका केन्द्रीय रूपक मेरे लिए सिर्फ मेरा परम प्रेमी होना नहीं है। इसके पीछे एक अवधारणात्मक विश्व है।''[94]

समकालीन हिन्दी साहित्य के परिदृश्य पर नजर डालने से यह स्पष्ट होता है अशोक वाजपेयी अपने कविताओं और आलोचनाओं में साहित्य और अन्य कलाओं के पारस्परिक सम्बंध का पुन: संस्थापन करते हैं। और इस मामले में वे अकेले कवि आलोचक हैं जो साहित्य के साथ अन्य कलाओं का सह-सम्बंध की ही बात नहीं करते हैं वे तो अपने समय के संगीत, नृत्य, रंगमंच और चित्रकला आदि पर बखूबी-ढंग से लिखते भी हैं। अपना गंभीर चिन्तन प्रस्तुत करते हैं। इसका जीता-जागता साक्ष्य जनसत्ता के 'कभी-कभार' स्तम्भ की टिप्पणियाँ तथा उनकी आलोचना पुस्तक 'समय से बाहर' है। इस प्रसंग में आलोचक विश्वनाथ प्रसाद तिवारी का मानना हैं - "अपने समकालीनों में साहित्य के अतिरिक्त अन्य कलाओं पर विचार करने और लिखने वाले वे अकेले आलोचक हैं। अपने समय के संगीत, नृत्य, रंगमंच और चित्रकला आदि पर वाजपेयी की टिप्पणियाँ उनकी अन्य ललित कलाओं में दिलचस्पी ही नहीं प्रकट करती बल्कि आश्चर्य में डालती हैं। हिन्दी के मध्य समकालीन और कुछ आधुनिक कवियों में भी अन्य कलाओं का अच्छा ज्ञान दिखाई पड़ता है, कुछ तो उनमें पारंगत लगत है, पर दुर्भाग्य से हिन्दी के आलोचक इस क्षेत्र में शून्य हैं। एक रामविलास शर्मा को छोड़ दें जिनकी शास्त्रीय संगीत में अच्छी गति थी, तो शेष किसी का कला प्रेमी होने का साक्ष्य नहीं मिलता। ऐसे में अशोक वाजपेयी मरुस्थल में एक नखलिस्तान जैसे दिखते हैं। इस सन्दर्भ में उनकी पुस्तक 'समय से बाहर' (वर्ष 1994) उल्लेखनीय है जिसमें संगीत, नृत्य, रंचमंच और रूपंकर कला पर उनके गम्भीर निबंध हैं।"[95] कवि अशोक वाजपेयी परंपरा का पुनरीक्षण करते हुए आधुनिकता की खोज करते हैं। मृत्यु को जीवन के पड़ोस में देखते है तथा आदिवासी संस्कृति से लेकर समकालीन भारतीय संस्कृतियों का परिरक्षण करना और विदेशी काव्य रूप को अपनाकर उसे भारतीय जन जीवन तथा धरती सौन्दर्य से सम्पन्न कर महत्वपूर्ण रचनात्मक प्रयास अशोक वाजपेयी करते है,

जो अन्यत्र दुर्लभ है। इन्हीं कारणों से वे समकालीन हिन्दी साहित्य में अद्वितीय कवि के रूप में माने जाते हैं। अत: हिन्दी काव्य संसार में कवि अशोक वाजपेयी की उपस्थिति अपने आप में एक महत्वपूर्ण घटना है।

एक अपर पक्ष यह भी है कि पीछले अर्द्धशती में हिन्दो साहित्य के इतिहास में सबसे विवादास्पद कवि भी अशोक वाजपेयी रहे हैं, क्योंकि निर्भिक कवि जीवन में, अपने लेखन में कहीं भी कभी भी समझौता नहीं किए लेकिन हमेशा वे सच्चे विरोध का सम्मान करते हैं। वे बहुलता के पक्षधर हैं। अशोक वाजपेयी कहते हैं – ''सच्चे विरोध का, वैचारिक असहमति का मैं बेहद सम्मान करता हूँ। मुझे लगता है कि साहित्य और कलाएँ मनुष्य का एकमात्र स्थायी प्रजातन्त्र है जहाँ दृष्टियों की बहुलता ही अस्तित्व का मूलाधार है।''[96] कुछ ऐसा ही प्रयाग शुक्ल भी कहते हैं – ''अशोक में शरू से 'खेमों' से ऊपर उठकर भी साहित्य को देखने का रचनाकारों से प्रेम करने का, और उनके प्रति आदर–सम्मान रखने का सहज आग्रह रहा है।''[97] अपने जीवन में अशोक वाजपेयी हमेशा कथनी और करनी में एकता बरकरार रखे हैं। राजेन्द्र धोपड़कर भी मानते है कि – ''अशोक वाजपेयी में तमाम दुर्गुण हो सकते है लेकिन हिन्दी साहित्य संसार का एक स्थायी दुर्गुण 'पाखंड' उनमें नहीं है। एक बात उनके बारे में दावे से कही जा सकती है कि वे उन चंद दुर्लभ मनुष्य में से है। जिन्होंने बहुत कम समझौते किये। उन्होंने वही किया जिस पर उनका यकीन था। उनके सोचने कथनी और करनी में फर्क नहीं है। इसलिए उनके लिखे, उनके किए पर आप विश्वास कर सकते हैं, कि उनका मंतव्य भी यही था, इसलिए उनका विश्लेषण करना आसान है, आपको किसी छूपे हुए षड्यंत्र को सूँघते हुए घूमने की जरुरत नहीं है।''[98] सुधीश पचौरीजी भी लगभग यही कहते हैं —''अशोक वाजपेयी अपनी थियरी और अपने जवरदस्त साहित्य रूपक बनाते हैं और उपलब्ध थियरियों की अतियों से झगड़ता है। और इस तरह हम उन्हें एक बेहद ईमानदार साहित्यकार

के रूप में पाते हैं जो अपनी थियरी से अपने कृत्य की वैधता सिद्ध करने के लिए झगड़ता है। झूठ की जगह, अवसरानुकूलता की जगह वह एक बिचार बनाना है जिसे प्राय: लक्षित नहीं किया जाता।"[99] अशोक वाजपेयी समकालीन हिन्दी साहित्य के खेमेबाजी के दल-दल के चपेट में कभी नहीं आते है और अकेला पड़ने का जोखिम उठाकर भी सच बोला है। जाहिर-सी बात है आगे चलकर उनके साथ ऐसा हुआ भी है। डॉ धर्मवीर भी ऐसा ही मानते हैं - "अशोक वाजपेयी अपनी कविताओं में सच बोलने का साहस किया है। सच बोलना अच्छी बात है, लेकिन इनकी विशेषता यह है कि इन्होंने उस संस्कृति के बीच खड़े होकर सच बोलने का प्रयास किया है जिस संस्कृति में सच बोलने की परंपरा नहीं है। ऐसे में उन्हें सच बोलने को कुछ न कुछ सजा तो मिलनी थी। उन्हें सजा यह मिली है कि उनके काव्य का कहीं जिक्र नहीं किया जाएगा।"[100] लेकिन सच्चाई तो यह है कि यद्यपि इस तरह की नाकाम कोशिशे उनके साथ हुई है फिर भी अशोक वाजपेयी अपनी प्रतिभा के बल पर निष्काम भावना से कार्य करते रहे और सफल भी रहे हैं। इस प्रसंग में स्वयं अशोक वाजपेयी कहते हैं- "मुझे साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र से किसी आदेश या अभियान से नहीं निकाला जा सकता और सौभाग्य से साहित्य और संस्कृति ऐसा हैं और जहाँ से आपको कोई भी, चाहे वह सत्ता हो या ईश्वर, संघ हो या संगठन, अभियान हो या कुप्रचार, देश निकाला दे नहीं सकता।"[101] अशोक वाजपेयी के व्यक्तित्व के प्रति हिन्दी समाज का व्यवहार कुछ विचित्र-सा और द्वैधपूर्ण अवश्य रहा है, और ऐसा होना ही था क्योंकि सुमन वर्मा की भाषा में कहें तो 'राजनीति, सत्ता पूँजी, व्यवसायीकरण और कुरुचि की अपशक्तियों के हाथों निरंतर सरलीकृत, कायर, मूढ़ और अन्तत: करुणाहीन होते जा रहे समाज में कोई भी निष्ठापूर्ण और प्रतिबद्ध सार्वजनिक कर्म अभिशाप होने के लिए अभिशप्त है। कुछ ऐसा ही व्यवहार अपने समकालीनों द्वारा अशोक वाजपेयी के साथ हुआ

है, फिर भी अशोक वाजपेयी इन सबको परवाह किए बिना अपनी पवित्र लड़ाई लड़ते जा रहे हैं—

"वह आदमी
लड़ता है
अपने आदमी बने और बचे रहने की
कही भी दर्ज न की जाने वाली एक पवित्र लड़ाई।"[102]

दरअसल अपने समकालीनों द्वारा अशोक वाजपेयी के प्रति जो द्वैधपूर्ण व्यवहार रहा है उसके पीछे पहला कारण तो यह है कि उनको समग्रता से पढ़ा नहीं गया और दूसरे–कुछ आलोचक उन्हें उपेक्षापूर्ण दृष्टि से खंड–खंड रूप से देखते हैं। परिणामत : उन पर कुछ निराधार आरोप भी लगते हैं। वास्तव में यही सब जाकर अन्ततः समकालीन हिन्दी साहित्य परिदृश्य में अशोक वाजपेयी को केन्द्र में स्थापित करते है। तभी तो सुधीश पचौरीजी कहते है – "एक व्यक्ति क रूप में अशोक वाजपेयी का पाठ उस चिह्न को खोलने की कोशिश है जिसने साहित्य को एक मनाया जाने लायक उत्सव बनाया है, स्टेटिज्म को उसकी सीमा में भी पराकाष्ठा तक पहुँचाया है, जो जिद्दी है, जो साहित्य में संकल्प के साथ आया है और साहित्य क लिए जान को बाजी लगा सकता है। किसी अन्य भाषा में होता तो हिरो बना दिया जाता। सदा के पैरानायड हिन्दी के कुछ लोग उसके साथ बैरी जैसा व्यवहार इसलिए करते हैं क्योंकि उनके चित्त में गहरे विक्षेप है, धधकती राख होती ईर्ष्याएँ हैं क्योंकि उसके अपने उत्पात भी कम नहीं है।"[103] सूमन वर्मा भी कुछ ऐसा ही कहते है "जिस हदतक अजनवीयत और बाहरीपन अशोक वाजपेयी का व्यक्तित्व अपने समकालीनों के बीच झेलता रहा है, उसी हद तक उनकी कविता हिन्दी काव्य परंपरा के बीच एक आत्मीयता और जातीयता के रिश्ते में बँधी हुई है। यह द्वैध, या कहें विडम्बना, दिलचस्प और ध्यान देने योग्य है। मानो अपनी काव्य

परंपरा के साथ यह सजातीय और आत्मीय रिश्ता बनाने की कौशिश में ही अशोक वाजपेयी अपने समकालीनों के बीच इस कदर बाहरीपन के शिकार होते गए हैं। अगर हम हिन्दी कविता को दूर समकालीन कविता तक ही सीमित करके न देखे तो हम पाएँगे कि उनकी कविता हमारी काव्य-परम्परा के साथ बहुत गहरे स्तर पर प्रतिश्रूत है। उसके साथ सम्बद्ध और उसका हमारे समय में पुनर्वास करती कविता है।"[104]

जीवन की मार्मिक अनुभूतियों के कवि तथा हिन्दी के वैचारिक संग्राम में एक पक्षधर रहे कवि अशोक वाजपेयी सत्तर पार कर चुके हैं फिर भी जीवन के साथ-साथ कविता या साहित्य में उनकी अदम्य निजी जिजीविषा की कहीं कोई कमी नहीं आई हैं। अभी भी ऊर्जा से भरपूर, उत्साह से परिपूर्ण और सपनों को पूरा करने की उत्कट उम्मीद लिए हुएँ हैं तभी तो सुधीश पचौरी भी कहते हैं - "अशोक पिछले पचास वर्षो के बीच पहले साहित्यकार कहें जा सकते हैं जो अपने साहित्यकार होने को लेकर अभिमानी, नितान्त सचेत, गम्भीर और लगातार कॉनशिपस कांशस दिखते-दिखाते है, साहित्यकार होने की 'लाज' से और मरते होंगे अशोक दुसरों को मारते है।"[105] दृढ़ व्यक्तित्व सम्पन्न, बहुलता के पक्षधर, उदारता के समर्थक कवि अशोक वाजपेयी अपनी वैचारिक निष्ठा पर कायम रहते हुए भी उन्होंने अपनी रुचि आलोचना और सम्पादन-आयोजन में कभी भी अपने वैचारिक विरोधिता को या उनसे भिन्न मतादर्शवालों को भी संग-साथ लिए हुए आगे बढ़ रहे हैं। आज हर दिशमें विकास की ओर जल्दी जल्दी आग बढ़ते हुएँ भारत देश के लिए तथा देश-दुनिया भर के संस्कृति के क्षेत्रों में और सृजनात्मक कलाओं के सन्दर्भ में अशोक वाजपेयी की सेवाओं की काफी जरुरत है। हम उम्मीद करते हैं जरुर वे हमसे ज्यादा वाकिफहाल है और आखिरी सांस तक वे

निभाएँगे। 'कैसे और किससे' कविता में कवि अशोक वाजपेयी इस बात का जिक्र भी करते हैं —

"जानते हुए भी भागदौड़ की अब उमर नहीं रही
अभी भी ऐसे भागता हूँ कि मेरे न पहुँचने से
कुछ होने से रुक जायेगा
या कुछ ऐसी रौशनी मिल जाऐगी कि
बढ़ते हुए अँधेरे के खिलाफ एक छोटी-सी-लौ
इस ठण्ड में भी जला रख सकूँगा।"[106]

बिलकुल इस ठण्ड में भी लौ जलाकर रखने में कवि अशोक वाजपेयी सक्षम रहें हैं। उमर इसके आड़े नही आती। वे आज भी तरूण जैसा हीं भागदौड़ कर रहे। मुकुन्द लाठ के शब्दों में कहें तो — 'मुझे नहीं पता था कि अशोक जो सत्तर के होने चले हैं तो बरसों से उन्हें एक-सा ही देखता आया हूँ — वही खुलापन, वही मुस्कान। ठीक है, हम सभी किसी न किसी आय् में होते हैं, पर हमारे अपने निबिड़ होने में आय् अप्रासगिक भी होती है। अशोकजी के साथ तो यह सच है ही। अभी तो उसके मन में बहुत कुछ करने, बनाने-गढ़ने, लिखने, सोचने-समझने की उंमग तरुण दिखाती है।' [107]

सन्दर्भ :

1. दुख चिट्ठीरसा है, अशोक वाजपेयी, 2008 पृ. 15
2. अशोक वाजपेयो पाठ कुपाठ, सम्पा: सुधीश पचौरी, 1999 पृ. 39
3. पावभर जीरे में ब्रह्मभोज, अशोक वाजपेयी 2003 पृ. 17
4. पूर्ववत् – पृ. 16
5. अशोक वाजपेयी पाठ कुपाठ, सम्पा: सुधीश पचौरी, 1999 पृ. 42
6. पूर्ववत् – पृ. 44,45
7. पावभर जीरे में ब्रह्मभोज, अशोक वाजपेयी, 2003 पृ. 87
8. पूर्ववत् – पृ. 82
9. अशोक वाजपेयी पाठ कुपाठ, सम्पा: सुधीश पचौरी, 1999 पृ. 40
10. पूर्ववत् – पृ. 40
11. पूर्ववत् – पृ. 42
12. पावभर जीरे में ब्रह्मभोज, अशोक वाजपेयी, 2003 पृ. 16
13. तिनका–तिनका भाग– 1, अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 329
14. पावभर जीरे में ब्रह्मभोज, अशोक वाजपेयी, 2003 पृ. 285
15. पूर्ववत् – पृ. 286
16. अशोक वाजपेयी पाठ कुपाठ, सम्पादक, सुधीश पचौरी, 1999 पृ. 44
17. पावभर जीरे में ब्रह्मभोज, अशोक वाजपेयी, 2003 पृ. 27
18. कोलॉज, सम्पादक : पुरुषोत्तम अग्रवाल, 2012 पृ. 70
19. अशोक वाजपेयी पाठ कुपाठ, सम्पा: सुधीश पचौरी, 1999 पृ. 147
20. पूर्ववत् – पृ. 42
21. पूर्ववत् – पृ. 45
22. पूर्ववत् – पृ. 79

23. पूर्ववत् – पृ. 172

24. पूर्ववत् – पृ. 82

25. पावभर जीरे में ब्रह्मभोज – अशोक वाजपेयी, 2003 पृ. 81

26. मेरे साक्षात्कार – अशोक वाजपेयी सम्पादक :अरविन्द त्रिपाठी, 2003 पृ. 129

27. पावभर जीरे में ब्रह्मभोज – अशोक वाजपेयी 2003 पृ. 23

28. अशोक वाजपेयी पाठ कुपाठ – सम्पादक : सुधीश पचौरी, 1999 पृ. 89

29. पावभर जीरे में ब्रह्मभोज – अशोक वाजपेयी 2003 पृ. 25

30. जो नहीं है – अशोक वाजपेयी, 1999 पृ. 22,23

31. अशोक वाजपेयी पाठ कुपाठ – सम्पादक : सुधीश पचौरी, 1999 पृ. 240

32. पूर्ववत् – पृ. 229

33. पावभर जीरे में ब्रह्मभोज, अशोक वाजपेयी, 2003 पृ. 29

34. तिनका–तिनका भाग– 1 - अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 143

35. घास में दुबका आकाश – अशोक वाजपेयी, 1994 पृ. 27

36. पावभर जीरे में ब्रह्मभोज – अशोक वाजपेयी, 2003 पृ. 30

37. पूर्ववत् – पृ. 30

38. तिनका–तिनका भाग– 1 - अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 22,23

39. पावभर जीरे में ब्रह्मभोज – अशोक वाजपेयी, 2003 पृ. 32,33

40. तिनका–तिनका भाग– 1, अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 239

41. पावभर जीरे में ब्रह्मभोज – अशोक वाजपेयी, 2003 पृ. 33

42. तिनका–तिनका भाग– 1 - अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 293

43. पावभर जीरे में ब्रह्मभोज – अशोक वाजपेयी, 2003 पृ. 33,34

44. तिनका–तिनका भाग– 2 - अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 117

45. मेरे साक्षात्कार अशोक वाजपेयी – सम्पादक : अरविन्द त्रिपाठी, 1998 पृ. 38

46. अशोक वाजपेयी पाठ कुपाठ – सम्पादक : सुधीश पचौरी, 1999 पृ. 62

47. पूर्ववत् – पृ. 203

48. मेरे साक्षात्कार अशोक वाजपेयी – सम्पादक : अरविन्द त्रिपाठो, 1998 पृ. 74

49. अशोक वाजपेयी पाठ कुपाठ – सम्पादक : सुधीश पचौरी, 1999 पृ. 304

50. जो नहीं है – अशोक वाजपेयी, 1999 पृ. 43

51. पावभर जीरे में ब्रह्मभोज – अशोक वाजपेयी, 2003 पृ. 69

52. अशोक वाजपेयी पाठ कुपाठ – सम्पादक : सुधीश पचौरी, 1999 पृ. 222,223

53. पूर्ववत् – पृ. 223

54. तिनका–तिनका भाग– 2 - अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 239,240

55. तिनका–तिनका भाग– 2 - अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 367

56. पूर्ववत् – पृ. 320

57. समय के पास समय – अशोक वाजपेयी, 2000 पृ. 13

58. पूर्ववत् – पृ. 56

59. पूर्ववत्–भूमिका

60. इबारत से गिरि मात्राएँ – अशोक वाजपेयी, 2002 पृ. 19

61. पूर्ववत् – पृ. 41

62. पूर्ववत् – पृ. 57

63. पूर्ववत् – पृ. 142

64. कुछ रफु कुछ थिगड़े – अशोक वाजपेयी, 2004 पृ. 18

65. पूर्ववत् – पृ. 42

66. पूर्ववत् – पृ. 62

67. पूर्ववत् – पृ. 31,32

68. कुछ रफु कुछ थिगड़े, अशोक वाजपेयी, 2004 पृ. 30

69. पूर्ववत् – पृ. 66

70. पूर्ववत् – पृ. 30

71. दुख चिट्ठीरचा है, अशोक वाजपेयी, 2008 पृ. 137

72. पूर्ववत् – पृ. 135

73. पूर्ववत् – पृ. 33

74. पूर्ववत् – पृ. 104

75. पूर्ववत् – पृ. 106

76. कुछ रफ़ु कुछ थिगड़े, अशोक वाजपेयी, 2004 पृ. 24

77. अशोक वाजपेयी पाठ कुपाठ, सम्पा: सुधीश पचौरी, 1999 पृ. 7

78. पूर्ववत् – पृ. 15

79. पूर्ववत् – पृ. 7

80. मेरे साक्षात्कार, अशोक वाजपेयी सम्पा : अरविन्द त्रिपाठी, 1998 पृ. 93

81. अशोक वाजपेयी पाठ कुपाठ, सम्पा: सुधीश पचौरी, 1999 पृ. 337

82. प्रतिनिधि कविताएँ, अशोक वाजपेयी सम्पा: अरविन्द त्रिपाठी,1999 –भूमिका

83. मेरे साक्षात्कार, अशोक वाजपेयी सम्पा : अरविन्द त्रिपाठी, 1998 पृ. 23

84. अशोक वाजपेयी पाठ कुपाठ, सम्पा: सुधीर पचौरी, 1999 पृ. 12

85. मेरे साक्षात्कार, अशोक वाजपेयी सम्पा : अरविन्द त्रिपाठी, 1998 पृ. 72,73

86. अशोक वाजपेयी पाठ कुपाठ, सम्पा: सुधीश पचौरी, 1999 पृ. 145

87. पूर्ववत् – पृ. 166

88. मेरे साक्षात्कार, अशोक वाजपेयी सम्पा : अरविन्द त्रिपाठी, 1998 पृ. 14

89. अशोक वाजपेयी पाठ कुपाठ, सम्पा: सुधीश पचौरी, 1999 पृ. 296

90. मेरे साक्षात्कार, अशोक वाजपेयी सम्पा : अरविन्द त्रिपाठी, 1998 पृ. 38

91. अशोक वाजपेयी पाठ कुपाठ, सम्पा: सुधीर पचौरी, 1999 पृ. 61

92. पावभर जीरे में ब्रह्मभोज, अशोक वाजपेयी 2003 पृ. 30,31

93. अशोक वाजपेयी पाठ कपाठ, सम्पा: सुधीर पचौरी, 1999 पृ. 309,310

94. मेरे साक्षात्कार, अशोक वाजपेयी सम्पा : अरविन्द त्रिपाठी, 1998 पृ. 126

95. कोलॉज, सम्पा: पुरुषोत्तम अग्रवाल, 2012 पृ. 68

96. मेरे साक्षात्कार, अशोक वाजपेयी सम्पा : अरविन्द त्रिपाठी, 1998 पृ. 9

97. अशोक वाजपेयी पाठ कुपाठ, सम्पा: सुधीश पचौरी, 1999 पृ. 81

98. पूर्ववत् – पृ. 195

99. अशोक वाजपेयी पाठ कुपाठ, सम्पा: सुधीर पचौरी, 1999 पृ. 20

100. पूर्ववत् – पृ. 31

101. मेरे साक्षात्कार, अशोक वाजपेयी सम्पा : अरविन्द त्रिपाठी, 1998 पृ. 20

102. तिनका–तिनका भाग– 1, अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 320

103. अशोक वाजपेयी पाठ कुपाठ, सम्पा: सुधीश पचौरी, 1999 पृ. 30

104. पूर्ववत् – पृ. 238

105. पूर्ववत् – पृ. 40

106. इबारत से गिरि मात्राएँ, अशोक वाजपेयी, 2002 पृ. 38

107. कोलॉज, सम्पा: पुरुषोत्तम अग्रवाल पृ. 61